हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजका १५ वाँ ग्रन्थ ।

उपवास-चिकित्सा।

लेखक

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा

सम्पादक, नागरीप्रचारिणीपत्रिका और स० सम्पादक

हिन्दी-शब्दसागर ।

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

वैशाख १९७५ वि० ।

मई १९१८ ई० ।

द्वितीयावृत्ति ।] [मूल्य बारह आने ।

प्रकाशक
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

मुद्रक,
रा० चिंतामण सखाराम देवळे,
बम्बईवैभव प्रेस,
सँढर्स्ट रोड, गिरगाँव, बम्बई।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीज ।

हिन्दीसाहित्यके भडारको उत्तम उत्तम ग्रंथरत्नोंसे भूषित करनेके लिए यह सीरीज निकाली गई है । हिन्दीके नामी नामी विद्वानोकी अनुमतिसे सीरीजके लिए ग्रन्थ चुने जाते हैं । सभी ग्रंथोकी सफाई, छपाई लासानी होती है । अभी तक जितने ग्रंथ छप चुके हैं उन सबकी सभीने मुक्तकठसे प्रशसा की है । स्थायी ग्राहकोंको सभी ग्रथ पौनी कीमतमे दिये जाते हैं । आठ आना फीस भेजकर स्थायी ग्राहकोंमें नाम लिखाइए । नीचे लिखे ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं—

१–२	स्वाधीनता	२)	१७	दुर्गादास	॥=)
३	प्रतिभा	१)	१८	बंकिमनिबन्धावली	॥)
४	फूलोंका गुच्छा	॥-)	१९	छत्रसाल	१॥)
५	आँखकी किरकिरी	१॥)	२०	प्रायश्चित्त	१)
६	चौबेका चिट्ठा	॥)	२१	अब्राहम लिंकन	॥=)
७	मितव्ययता	॥=)	२२	मेवाडपतन	॥)
८	स्वदेश	॥=)	२३	शाहजहाँ	॥=)
९	चरित्रगठन और मनोबल	=)	२४	मानव-जीवन	१।=)
१०	आत्मोद्धार	१)	२५	उस पार	१)
११	शान्तिकुटीर	॥)	२६	ताराबाई	१)
१२	सफलता	॥=)	२७	देशदर्शन	३)
१३	अन्नपूर्णाका मंदिर	॥)	२८	हृदयकी परख	॥=)
१४	स्वावलम्बन	१॥)	२९	नवनिधि	॥=)
१५	उपवास-चिकित्सा	॥=)	३०	नूरजहाँ	१)
१६	सूमके घर धूम	=)	३१	आयर्लैंडका इतिहास	२॥)

डाक्टर बरनर मेकफेडन।

संसारके प्रसिद्ध उपवास चिकित्सक, फिजिकल कल्चरके संस्थापक और उपवासादि प्राकृतिक चिकित्सासम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंके लेखक।

वक्तव्य ।

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेकी इच्छा और प्रयत्न करना केवल परम आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत ही स्वाभाविक भी है। पर इस इच्छाकी पूर्ति और प्रयत्नकी सफलता बहुत ही थोड़े लोगोंके भाग्यमें होती है। दिन पर दिन रोगो और रोगियोकी सख्या इतनी बढती जाती है कि पूर्ण रूपसे स्वस्थ मनुष्य ढूँढ निकालना बहुत ही कठिन हो गया है। यहाँतक कि बहुत पहले ही इस देशमें 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' का सिद्धान्त बनाया जा चुका है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। शरीर स्वय कभी व्याधि-मदिर नहीं होता, उसकी प्रवृत्ति सदा नीरोग होने या रहनेकी ओर होती है, पर हम आहार-विहार आदिके प्राकृतिक नियमोका उल्लघन करके स्वय उसे व्याधि-मन्दिर बना लेते हैं। प्राणि-मात्रमें सर्वश्रेष्ठ गिने जानेवाले मनुष्यके लिए यह बात बहुत ही लज्जास्पद है।

इससे भी अधिक लज्जास्पद आजकलकी वह प्रचलित दूषित प्रथा है जिसकी सहायतासे व्याधिको शरीरसे बाहर निकाल देनेका प्रयत्न किया जाता है। जिस शरीरमें अपने आपको स्वयं नीरोग कर लेनेकी सबसे बडी शक्ति विद्यमान हो, उस तरह तरहके विषोके प्रयोगसे नीरोग करनेका प्रयत्न करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमे सबसे अधिक आश्चर्य और दु खकी बात यह है कि समस्त प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियोमे जो प्रणाली सबमे अधिक दूषित और हानिकारक है, सारे ससारमें वही सबसे अधिक प्रचलित भी है। हमारा तात्पर्य्य एलो-पैथीसे है जिसमें बहुत ही साधारण और सौम्य ओषधियोको बलपूर्वक तीव्र, उग्र और भयकर बनाया जाता है। यही कारण है कि उनकी मात्रामें थोडी सी वृद्धि हो जाने पर भी बहुत बडे अनर्थकी सम्भावना होती है। इस पुस्तकमे ओषधियोके सम्बन्धमे बहुत बड़े बड़े डाक्टरोंकी जो निन्दात्मक सम्मतियाँ दी गई है, वे सब एलोपैथिक ओषधियो पर ही हैं। ओषधि-चिकित्साकी और भी जितनी प्रणालियाँ हैं वे भी थोडी बहुत दूषित और हानिकारक अवश्य हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि ओषधिकी सहायतासे होनेवाली अस्थायी आरो-ग्यताकी अपेक्षा शरीरकी स्वसम्पादित आरोग्यता कहीं अधिक अच्छी होती है।

शरीरको आरोग्यता प्राप्त करनेके सबसे अच्छा अवसर उसी समय मिलता है जब कि उसकी सारी शक्तियोको सब तरहके भारोसे छुट्टी मिल जाय और यह छुट्टी लघन या उपवासकी सहायतासे ही मिल सकती है। जिस भोजनका

काम हमारे शरीरके अंग-प्रत्यगको पुष्ट करना है, वह हमारे शरीरके अंग-प्रत्यगके रोगोंको भी अवश्य ही बढाता जायगा, क्योंकि 'वृद्धि और पुष्टि करना' ही उसका स्वाभाविक धर्म्म है। भोजन करते रहनेके अतिरिक्त जहॉ ओषधियों आदिकी सहायतासे उसके कार्य्योंमें और भी विघ्न डाला जाता है, वहॉका रक्षक ईश्वर ही है। आयुर्वेदमे 'लघनं परमौषधम्' इसी लिए कहा गया है कि उससे शरीरको अपनी स्वाभाविक और आरोग्य स्थिति तक पहुँचनेमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। प्रत्येक रोगसे उपवासकी सहायतासे जितनी जल्दी छुटकारा मिलता है उतनी जल्दी और किसी उपायसे नहीं मिल सकता। और इस पुस्तकमें इसी उपवासके गुण, प्रकार और विधान आदि बतलाये गये हैं।

इस पुस्तकमें जो बातें बतलाई गई हैं वे इसी लिए बहुत अधिक हृदयग्राही हैं कि वे प्राकृतिक, सहज और युक्ति-युक्त हैं। हमारा विश्वास है कि जो विचारवान् पक्षपातरहित होकर इसमे बतलाई हुई बातो पर ध्यान देगा वह बहुत ही सहजमें उनके गुणोको स्वीकार करके उनका समर्थक और पक्षपाती बन जायगा, औषधोंके जालसे निकलकर प्रकृतिदेवीकी गोदमे स्वतत्रतापूर्वक रहने लगेगा।

युरोप, अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे उपवास-चिकित्सालय खुल गये हैं, जिनमें हजारो असाध्य रोगी भी आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हींमेसे एक चिकित्सालयके अध्यक्ष और सस्थापक बरनर मैकफेडन महाशय भी हैं। मैकफेडन साहबका केवल चिकित्सालय ही नहीं है, बल्कि उपवासचिकित्साशास्त्र सिखलानेके लिए एक कालेज भी है। उस कालेजके पहले भारतीय ग्रेजुएट श्रीयुत डाक्टर शावक बी० मादन हैं जिन्होंने सेण्टाक्रूज बम्बईमें एक उपवास-चिकित्सालय खोल रखा है। उन्होंने भी सैकडों पारसियो और मराठों आदिको केवल उपवास कराकर ही बडे बडे भयकर रोगोंसे मुक्त किया है, जिनके वर्णन समय समय पर वहॉके समाचारपत्रोमें छपते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक डा० मैकफेडनकी Fasting, Hydropathy and Exercise नामक अँगरेजी पुस्तक तथा डा० मादनकी 'उपवास' नामक गुजराती पुस्तकसे सहायता लेकर लिखी गई है, एतदर्थ हम दोनों महानुभावोंके परम कृतज्ञ हैं। श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीके भी हम बहुत कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमे ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखनेका परामर्श दिया और इसे प्रकाशित किया है।

काशी, शिवरात्रि।
विक्रम स० १९७२ } रामचन्द्र वर्म्मा।

उपवास-चिकित्सा ।

हमारे शरीरका संगठन ।

प्रत्येक मनुष्य, पशु और यहाँ तक कि जीवमात्रका शरी[illegible] हुआ है कि यदि उसमें किसी प्रकारके वाहरी या ऊपरी पदार्थके कारण दोप उत्पन्न होने लगे तो वह शरीर—यदि उसके साथ किसी तरहका वल-प्रयोग न किया जाय और उसे स्वाभाविक स्थितिमे रहने दिया जाय तो—उस दोपको आप ही आप दूर कर लेगा । शरीर यथासाध्य किसी अनावश्यक और हानिकारक वस्तुको अपने अदर नहीं रहने देगा । उसका सगठन ही ऐसा है कि वह सदा उसे वाहर निकालनेका प्रयत्न करता रहेगा । एक तो स्वयं हमारे शरीरमे ही हरदम वहुतसे अनिष्टकारी पदार्थ और तरह तरहके विप उत्पन्न होते रहते हैं, दूसरे हम लोगोंकी मूर्खता और कुपथ्य आदिके कारण उनकी सख्या और भी वढ़ जाती है । यदि शरीर अनिष्टकारी पदार्थोंको वाहर निकालनेका काम थोड़ी देरके लिए भी वंद कर दे तो जीवन असभव हो जाय । साँस, पसीने, मल, मूत्र, थूक और छींक आदिके रूपमे शरीरके भिन्न भिन्न भागोसे सदा हमारे शरीरसे तरह तरहके विकार निकलते रहते हैं । हमारा शरीर ये काम अपेन कर्तव्य-स्वरूप करता है । ऐसी दशामे हमारा भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि हम यथासाध्य और जान-वूझ कर शरीरके प्रति कोई ऐसा अन्याय न करें, उसके अदर कोई ऐसा दुष्ट पदार्थ न जाने दें जिसका प्रतिकार या प्रतिवंध उसकी शक्तिके वाहर हो । यदि हम अपने इस कर्तव्यका ध्यान न रखेगे, शरीरके अगो पर उनकी शक्तिसे अधिक वोझ लादेंगे तो परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर हमे जवाव दे देगा, हम रोगी हो जायँगे और अतमें मर भी जायँगे ।

उत्थान-चिकित्सा–

साधारण टाइपराइटरोंमें एक घंटी लगी रहती है जो छापनेके समय एक लाइन
खतम हो जानेपर अपने आप बोल उठती है। उसका शब्द सुनते ही छापनेवाला
सचेत हो जाता है और फिर घुमाकर नई लाइन प्रारम्भ करता है। इसी प्रकार और
भी बहुतसे यंत्रोंमें ऐसे पुर्जे लगे रहते हैं जो अपनी किसी नई आवश्यकताकी
सूचना किसी विशिष्ट संकेतके द्वारा देते हैं। हमारे शरीरकी बनावट भी बिल्कुल
वैसे ही यंत्रोंके समान, बल्कि उनसे भी अधिक पूर्ण और अच्छी है। हमारा स्नायु-
समूह आनेवाली किसी बाहरी विपत्तिको देखते ही एक विशेष ढंगसे हमें भयसूचक
संकेत करता है। वह हमें केवल बाहरी विपत्तियोंकी ही सूचना नहीं देता बल्कि
हमारी भीतरी आवश्यकताओंका ज्ञान भी हमें करा देता है। ज्योंही हमारे भोजन
या स्नायु आदिमें किसी प्रकारकी बाधा या त्रुटि होती है, अथवा हमारी रगों,
पट्ठों आदिमें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न होता है, त्योंही वह एक विशेष प्रकारसे
–जिसे हम उसकी भाषा भी कह सकते हैं–हमें उसकी सूचना दे देता है, केवल
सूचना ही नहीं, वह उसके प्रतिकारके लिए आवश्यक साधन भी बतला देता है।
तात्पर्य यह कि हमारे शरीरमें जितनी असाधारण और अस्वाभाविक घटनायें होती हैं,
स्नायु-समूह अपनी ओरसे उन सबकी सूचना दे दिया करता है। बहुत अधिक
सर्दी या गर्मीका पता हमें तुरत ही अपनी त्वचासे लग जाता है। यदि हवामें
मिर्चोंका धुआँ, किसी प्रकारकी धाँस या धूल आदि सम्मिलित हो तो हमें तुरत
खाँसी आने लगती है। यही खाँसी वह सूचना है जो हमें फेफड़ोंके द्वारा मिलती
है। छोटेसे छोटा तिनका या काँटा यदि हमारी आँखोंके सामने आ जाता है तो
हमारी पलकें आपसे आप, बिना हमारी इच्छाके ही बन्द हो जाती हैं। जहाँतक
सम्भव होता है, हमारा शरीर भीतरी और बाहरी आपत्तियोंसे अपनी रक्षा आप-
ही कर लेता है। हमारा शरीर एक ऐसा मकान है जो अपनी कोठरियोंमें आप ही
आप झाड़ू दे लेता है, अपने चूल्हे या अपनी अँगीठियाँ आप ही जला लेता है,
आवश्यकता पड़ने पर अपनी खिड़कियाँ और दरवाजे आप ही आप खोल और
बंद कर लेता है और दुष्ट आक्रमणकारियोंको पहले तो स्वयं ही मार भगानेकी चेष्टा
करता है और जब वह उसमें असमर्थ होता है तब उसकी सूचना अपने किराये
दारको दे देता है। इस सूचनाको समझना और आनेवाली विपत्तिसे शरीरकी
रक्षा करना किरायेदारका काम है।

शरीरकी भीतरी क्रिया।

शरीर-रचना-शास्त्रके ज्ञाताओं और बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि मनुष्यके शरीरमें जन्मसे लेकर मृत्युतक हर दम एक प्रकारका विष बनता और इकट्ठा होता रहता है। साधारणत लोगोको यह बात सुनकर हँसी आवेगी, पर हँसी आनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है। बात यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमे छोटे छोटे कोश हैं जिन्हें अँगरेजीमें Cells कहते हैं। ये कोश शरीरकी आन्तरिक क्रियासे आप ही आप नष्ट होते रहते हैं और रक्त-सचालनकी सहायतासे उनके स्थान पर नये कोश भी बनते जाते हैं। इस प्रकार हरदम शरीरमे पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं। यह क्रिया जीवधरियोंके अतिरिक्त वनस्पतियोंमे भी होती रहती है। अँगरेजीमे परिवर्तनकी इस क्रियाको Metabolism कहते हैं। हमारे यहाँ प्राचीन बौद्धोंमें भी इसीसे मिलता जुलता एक प्रकारका सिद्धान्त था जिसे क्षणिकवाद या क्षणभग कहते हैं। इस मतके अनुसार प्रत्येक वस्तुकी अवस्था या स्थितिमें प्रतिक्षण बराबर परिवर्तन होता रहता है। अस्तु। पुराने और नये कोशोंका जो अश अवशिष्ट रह जाता है, वही एक प्रकारका विष है। यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँच सकती है। हमारे शरीरके अवयवोंका एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक शीघ्र हो सके उस दूषित अशको हमारे शरीरसे बाहर निकाल दे। उस दूषित अशके बाहर निकलनेका प्रधान मार्ग हमारे शरीरकी त्वचा है जिससे वह अश पसीनेके रूपमे निकलता है। इसके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेट, गुरदे, तिल्ली और अँतड़ियों आदिसे भी सदा बहुतसा दूषित अश निकलता रहता है जो हमारे खूनके साथ मिलकर उसका रंग काला कर देता है। यह दूषित अश हमारे फेफड़ोंकी सहायतासे उस आक्सिजन द्वारा जलता या नष्ट होता रहता है जो साँस लेनेमें हवाके साथ हमारे फेफड़ों तक पहुँचता है। यदि हम किसी प्रकार साँस न ले अथवा न ले सके तो वह दूषित अश या विकार हमारे खूनमें इकट्ठा हो जायगा। फल यह होगा कि पेटमे पचा हुआ भोजन शरीरके सब अगोंमे न पहुँच सकेगा और वह विष-तुल्य विकार सारे शरीरमे फैलकर हमें कमजोर करता करता अँतमे मार डालेगा। पर हमारे फेफड़े उस विकारको भी

साधारण टाइप-राइटरोंमें एक घंटी लगी रहती है जो छापनेके समय एक लाइन खतम हो जानेपर आपसे आप बोल उठती है। उसका शब्द सुनते ही छापनेवाला सचेत हो जाता है और पेंच घुमाकर नई लाइन प्रारम्भ करता है। इसी प्रकार और भी बहुतसे यन्त्रोंमें ऐसे पुरजे लगे रहते हैं जो अपनी किसी नई आवश्यकताकी सूचना किसी विशिष्ट संकेतके द्वारा देते हैं। हमारे शरीरकी बनावट भी बिल्कुल वैसे ही यन्त्रोंके समान, बल्कि उनसे भी अधिक पूर्ण और अच्छी है। हमारा स्नायु-समूह आनेवाली किसी बाहरी विपत्तिको देखते ही एक विशेष रूपमें हमें भयसूचक संकेत करता है। वह हमें केवल बाहरी विपत्तियोंकी ही सूचना नहीं देता बल्कि हमारी भीतरी आवश्यकताओंका ज्ञान भी हमें करा देता है। ज्योंही हमारे भोजन या श्वास आदिमें किसी प्रकारकी बाधा या त्रुटि होती है, अथवा हमारी रगों, पट्ठों आदिमें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न होता है, त्योंही वह एक विशेष प्रकारसे —जिसे हम उसकी भाषा भी कह सकते हैं—हमें उसकी सूचना दे देता है, केवल सूचना ही नहीं, वह उसके प्रतिकारके लिए आवश्यक साधन भी बतला देता है। तात्पर्य यह कि हमारे शरीरमें जितनी असाधारण और अस्वाभाविक घटनायें होती हैं, स्नायु-समूह अपनी ओरसे उन सबकी सूचना दे दिया करता है। बहुत अधिक सरदी या गरमीका पता हमें तुरत ही अपनी त्वचासे लग जाता है। यदि हवामें मिरचोंका धुआँ, किसी प्रकारकी धाँस या धूल आदि सम्मिलित हो तो हमें तुरत खाँसी आने लगती है। यही खाँसी वह सूचना है जो हमें फेफड़ोंके द्वारा मिलती है। छोटेसे छोटा तिनका या कीड़ा यदि हमारी आँखोंके सामने आ जाता है तो हमारी पलकें आपसे आप, बिना हमारी इच्छाके ही बन्द हो जाती हैं। जहाँतक सम्भव होता है, हमारा शरीर भीतरी और बाहरी अनिष्टोंसे अपनी रक्षा आप-ही कर लेता है। हमारा शरीर एक ऐसा मकान है जो अपनी कोठरियोंमें आप ही आप झाड़ू दे लेता है, अपने चूल्हे या अपनी अग्नियाँ आप ही जला लेता है, आवश्यकता पड़ने पर अपनी खिड़कियाँ और दरवाजे आप ही आप खोल और बंद कर लेता है और दुष्ट आक्रमणकारियोंको पहले तो स्वयं ही मार भगानेकी चेष्टा करता है और जब वह उसमें असमर्थ होता है तब उसकी सूचना अपने किरायेदारको दे देता है। उस सूचनाको समझना और आनेवाली विपत्तिसे शरीरकी रक्षा करना किरायेदारका काम है।

शरीरकी भीतरी क्रिया ।

शरीर-रचना-शास्त्रके ज्ञाताओं और बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि मनुष्यके शरीरमें जन्मसे लेकर मृत्युतक हर दम एक प्रकारका विष बनता और इकट्ठा होता रहता है। साधारणतः लोगोंको यह बात सुनकर हँसी आवेगी, पर हँसी आनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है । बात यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमें छोटे छोटे कोश हैं जिन्हें अँगरेजीमें Cells कहते हैं । ये कोश शरीरकी आन्तरिक क्रियासे आप ही आप नष्ट होते रहते हैं और रक्त-सचालनकी सहायतासे उनके स्थान पर नये कोश भी बनते जाते हैं । इस प्रकार हरदम शरीरमें पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं । यह क्रिया जीवधरियोंके अतिरिक्त बन-स्पतियोंमे भी होती रहती है । अँगरेजीमें परिवर्तनकी इस क्रियाको Metabolivm कहते हैं । हमारे यहाँ प्राचीन बौद्धोमें भी इसीसे मिलता जुलता एक प्रकारका सिद्धान्त था जिसे क्षणिकवाद या क्षणभग कहते हैं । इस मतके अनुसार प्रत्येक वस्तुकी अवस्था या स्थितिमें प्रतिक्षण बराबर परिवर्तन होता रहता है । अस्तु । पुराने और नये कोशोंका जो अश अवशिष्ट रह जाता है, वही एक प्रकारका विष है । यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँच सकती है । हमारे शरीरके अवयवोंका एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक शीघ्र हो सके उस दूषित अशको हमारे शरीरसे बाहर निकाल दें । उस दूषित अशके बाहर निकलनेका प्रधान मार्ग हमारे शरीरकी त्वचा है जिससे वह अश पसीनेके रूपमे निकलता है । इसके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेट, गुरदे, तिल्ली और अँतड़ियों आदिसे भी सदा बहुतसा दूषित अश निकलता रहता है जो हमारे खूनके साथ मिलकर उसका रंग काला कर देता है । यह दूषित अंश हमारे फेफड़ोकी सहायतासे उस आक्सिजन द्वारा जलता या नष्ट होता रहता है जो साँस लेनेमें हवाके साथ हमारे फेफड़ों तक पहुँचता है । यदि हम किसी प्रकार साँस न ले अथवा न ले सके तो वह दूषित अश या विकार हमारे खूनमें इकट्ठा हो जायगा । फल यह होगा कि पेटमें पचा हुआ भोजन शरीरके सब अगोंमे न पहुँच सकेगा और वह विष-तुल्य विकार सारे शरीरमे फैलकर हमे कमजोर करता करता अँतमे मार डालेगा । पर हमारे फेफड़े उस विकारको भी

शरीरमें इकट्ठा नहीं होने देते और उच्छ्वासके द्वारा बडे परिमाणमें उसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी प्रकार मल-मूत्र और खखार आदिके रूपमें हमारे शरीरसे बहुतसे विकार बाहर निकलते रहते हैं। यदि इन विकारोंका निकलना बंद हो जाय और वे शरीरके अदर ही रह जायँ तो तुरत ही हमारी मृत्यु होनेमें कोई सन्देह न रह जाय।

वैज्ञानिकोंका यह भी मत है कि जब हम अधिक परिश्रम करते हैं, तब हमारे शरीरके कोश या cells अधिक परिमाणमें नष्ट होते हैं, पर नये कोश अधिक परिमाणमें उसी समय बनते हैं, जब कि हम सब प्रकारके शारीरिक श्रम छोडकर आराम करते हैं। अर्थात् शरीरकी आरोग्यताके लिए कामकाज, परिश्रम और व्यायाम आदिकी जितनी आवश्यकता है, शरीरको सब प्रकारके परिश्रमोंसे छुट्टी देकर सुखी बनानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। यदि हम अपने शरीरको आराम न देंगे और उसे हरदम काममें लगाये रहेंगे तो उसमे नवीन शक्ति नवीन जीवनका सचार न होगा। फल यह होगा कि हम दिनपर दिन दुर्बल और रोगी होते जायँगे। जो लोग अपने शारीरिक बलके भरोसे नित्य परिश्रम ही करते रहते हैं और कभी आराम नहीं करते वे बहुत शीघ्र अपने स्वास्थ्य और यहाँ तक कि प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। शरीरको आराम देनेका सबसे अच्छा प्राकृतिक उपाय निद्रा है। मनुष्यके शरीरके कोश सोनेमें ही सबसे अधिक परिणाममें बनते हैं। जाग्रत अवस्थामें परिश्रम करनेके कारण जो पुराने कोश नष्ट होकर विषका रूप धारण रूप करते हैं उनका शमन भी सोनेमें ही होता है। बहुत अधिक कसरत करनेवालों या दौडनेवालोको लीजिए। जो लोग दम बाँधकर बहुत अधिक कसरत करते या दौडते हैं उनके शरीर और छातीमें एक प्रकारका दर्द उत्पन्न हो जाता है। मैकेंजी नामक एक प्रसिद्ध डाक्टरने इस दर्दका कारण यह बतलाया है कि बहुत अधिक परिश्रम करने या दौड़ने आदिके कारण शरीरमेंका इतना अधिक दूषित अंश रक्तमें मिल जाता है कि फेफडे उसे साँसके द्वारा बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाते हैं। उस दशामें मनुष्यके सिरमें चक्कर आने लगता है और उसकी आकृति देखनेसे जान पड़ता है कि उसे स्वच्छ हवाकी बहुत आवश्यकता है। अब जरा इस परिश्रम

करनेवाले या दौड़नेवालेको थोड़ी देरतक आराम करने दीजिए। उसका हाँफना कुछ कम हो जायगा और उसका दर्द जाता रहेगा। इसका कारण यही है कि उसके दूषित अंश बाहर निकालनेवाले अवयवोंको कुछ आराम मिला है और वे अपना कार्य्य अच्छी तरह करने लगे हैं। शरीरमें एकत्र हुए विषके बाहर निकलते ही उसका दर्द भी कम हो जाता है। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि किसी प्रकारका अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंमें जो दोष या विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करनेके लिए उन अवयवों या अंगोको आराम देना चाहिए, कुछ समय तक उनसे कोई नया काम न लेना चाहिए। यह सिद्धान्त संसारके सभी कामों और सभी पदार्थोंमें समान-रूपसे प्रयुक्त होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, नदियाँ, वनस्पतियाँ और वृक्ष आदितक आराम चाहते और करते हैं। जिस चीजसे बहुत अधिक और निरंतर काम लिया जाता है, वह बहुत जल्दी नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और जिसे बीच बीचमें अवकाश मिलता रहता है, वह अपनी पूरी आयुतक पहुँचती और अपने कार्य्य उत्तमतापूर्वक करती है।

नियमोंका उल्लंघन।

मनुष्य है तो जीव-मात्रमें सबसे अधिक श्रेष्ठ, पर उसके काम और आचरण बहुधा पशुओंके कामों और आचरणोंसे भी गये-बीते होते हैं। इस उन्नति और सभ्यताके जमानेमें तो उसके निन्दनीय आचरण और भी बढ़ते जाते हैं। हम लोग औरोंके साथ जो अन्याय करते हैं वह तो करते ही हैं। हमारा सबसे बड़ा अन्याय स्वयं अपने साथ—अपने शरीरके साथ—होता है। हमारा यह अन्याय इतना पुराना और बढ़ा चढ़ा है कि उसका बहुत अधिक अभ्यास हो जानेके कारण हम उसे अन्याय ही नहीं समझते। हम न तो अपने शरीर और बलको देखते हैं और न हमें उनकी रक्षा और वृद्धिका ध्यान रहता है। आप किसी बंदर या बकरीको मांस या अफीम खिलानेका प्रयत्न कीजिए, आपको कभी सफलता न होगी, पर अपने आपको समझदार कहनेवाले बहुतसे ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो इनसे भी निकृष्ट पदार्थोंको प्राप्त करनेमें अपनी ओरसे कोई कसर न छोड़ेंगे। जो मनुष्य

विवेक-युक्त कहलाता है, वही कभी इस बातका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि वह स्वय शाकाहारी जीवोंकी श्रेणीका है अथवा मासाहारी जीवोंकी श्रेणीका। उसे शराब, कबाब, माँस, मछली, अफीम जो चाहिए सो खिला दीजिए, वह बडी प्रसन्नतासे खा लेगा। यही नहीं बल्कि वह स्वय उन सब पदार्थोंको पानेका प्रयत्न करेगा और सबसे बडी विलक्षणता यह है कि जितनी अधिक मात्रामे वह उन सब पदार्थोंको उदरस्थ कर सकेगा, उतनी अधिक मात्रा लेनेमें वह अपनी ओरसे कोई बात उठा न रखेगा! लोग कहते हैं कि पशुओंमें एक प्रकारका सहज या स्वाभाविक ज्ञान होता है जिसके कारण वे कोई हानिकारक पदार्थ ग्रहण नहीं करते। बहुत ठीक, पर क्या वह सहज और स्वाभाविक ज्ञान मनुष्योंमें नहीं है? है, और अवश्य है। पर मनुष्य जान बूझकर उस ज्ञानका गला घोटता है और स्वयं बलपूर्वक उसके विरुद्ध आचरण करता है। छोटे छोटे बच्चोंको मास देखकर स्वाभाविक घृणा होती है, पर माता-पिता और घरके दूसरे लोग उसे तरह तरहसे बहका कर मास खानेके लिए प्रवृत्त करते हैं। यह घृणा वह सहज ज्ञान नहीं तो और क्या है? बडे बडे शराबी भी शराब पीनेके समय बेतरह नाक सिकोडते और मुँह बिचकाते हैं! क्यो? इसी लिए कि वे अपने सहज-ज्ञानकी हत्या करते हैं, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध आचरण करते है। सुरती खाने, भाँग, अफीम, गाँजा आदि पीनेके लिए लोगोंको क्यो महीनों थोडी थोडी मात्रा बढा कर अभ्यास करना पडता है? इसी लिए कि ये सब पदार्थ स्वभावत: उनके खानेके योग्य नहीं होते। इन सबके व्यवहारके लिए मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रवृत्तिमे परिवर्त्तन करना पडता है।

मनुष्यका यह अन्याय और अनौचित्य केवल यहीं तक नहीं रुक जाता बल्कि आगे चलकर वह और भी विकरालरूप धारण करता है। एक तो वह खाद्य और अखाद्य सभी पदार्थ खाता ही है, दूसरे वह उन्हें अपनी आवश्यकता और शक्तिसे कहीं अधिक खा लेता है। आपको भूख तो बिलकुल नहीं है, पर आपके मित्र महाशयका बहुत आग्रह है कि भोजन तैयार है, आप कुछ न कुछ अवश्य खा लीजिए। आप अपनेको लाचार समझकर खाने बैठ जाते हैं। आप घरमे तो भर-पेट भोजन करके चलते हैं, पर रास्तेमें कोई बढियासी चीज बिकती हुई देखकर मोल लेते हैं और उसके खानेका मौका ढूँढने लगते हैं। किसी मित्रके यहाँ निम-

त्रणमे जाकर तो आपका यह विश्वास वहुत ही दृढ़ हो जाता है कि—" **परार्द्ध दुर्लभं लोके शरीराणि पुनः पुनः ।** " इन सव अवसरों पर आप यह नहीं समझते कि हमारा पेट इतनी तरहकी और इतनी अधिक चीजे पचानेमें समर्थ होगा या नहीं । पेट अपनी चिन्ता आप ही कर लेगा, आपसे और उससे मतलव ? पर नहीं, थोड़ी ही देर वाद मतलव पैदा हो जाता है। ज्योंही आपने कुछ अधिक खाया त्योंही आपकी तवीयत भारी हो जाती है और आपको चलने फिरनेमें कठिनाई होती है । उस समय आप लेमनेडवालेकी दूकानकी शरण लेते हैं, दोस्तोसे नमक सुलेमानी माँगते हैं और इसी प्रकारके अन्य उपचारोंकी चिन्तामे लगते हैं । जो लोग इतनी मोटी वातें नहीं समझ सकते उन्हें यह वात समझाना तो और भी कठिन है कि ये ऊपरी उपचार उस समय तो मनुष्यकी शारीरिक वेदना कम कर देते हैं पर स्वय वह वेदना वीजरूपसे उनके शरीरमे वनी ही रहती है और आगे चलकर अनेक वड़े वड़े रोगरूपी वृक्ष उत्पन्न करती है ।

यद्यपि पाश्चात्य सभ्य देशोंमें भी लोग २४ घटोंके अन्दर पाँच पाँच वार भोजन करते हैं और उनके भोजनकी मात्रा भी कम नहीं होती है, तथापि अन्य देशोकी अपेक्षा भारतमें अधिक परिमाणमे भोजन करनेवाले वहुतायतसे हैं । दस दस सेर दही और चिउड़ा खानेवाले मैथिलो और वारह वारह सेर लड्डू खानेवाले भट्टों और चौवोंको जाने दीजिए, पजावके साधारण जाट भी एक वारमें डेढ सेर आटेकी रोटियाँ खाते हैं, भोजपुरिये देहातियोको विना डेढ़ सेर सत्तूके सतोष नहीं होता, यहाँतक कि साधारण वंगाली भी विना आध सेर चावलके भातके तृप्त नहीं होते । ये सव अनर्थ केवल इस लिए होते हैं कि वे लोग वाल्यावस्थासे ही अपने घरके वड़े वूढोको वहुत अधिक भोजन करते देखते हैं । केवल देखना ही उनके लिए उतना अधिक हानिकारक नहीं होता, जितना उनकी माताओका आग्रह हानिकारक होता है । गोदके वच्चेको स्त्रियाँ जवरदस्ती अधिक दूध पिलाती हैं, अधिक सयाने वच्चोको मार मारकर और वाँधवाँधकर अधिक भोजन कराया जाता है । वालकका पेट भरा रहता है, उसकी कुछ खानेकी इच्छा नहीं होती, पर माता उसे विना कुछ खिलाये क्यों सोने दे ! कभी कभी तो वालकको न खानेके कारण मार तक खानी पड़ती है ! और जव मातायें एक छोटा मोटा युद्ध करके अपने वालककोको कुछ खिलाने पिलानेमें विजय प्राप्त कर लेती हैं तव

उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। वे मनमें समझती हैं कि, हमने अपने बालकोंका बड़ा उपकार किया, और यही उपकार जब अपकाररूपमें प्रकट होता है, बालकको अपच या इसी प्रकारका कोई और रोग हो जाता है तब लोग उनका सहज उपचार करने और उनको स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देनेके बदले उनके साथ एक नया उपकार आरंभ कर देते हैं। औषधके रूपमें तरह तरहके विष उनके पेटमें उतारे जाते हैं, मानो 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्त पर उन्हें अच्छा करनेका प्रयत्न किया जाता है।

अधिक भोजनसे हानियाँ।

अधिक भोजनसे होनेवाली हानियाँ इतनी अधिक हैं कि उनका पूरा पूरा वर्णन करना प्राय असम्भव है। इस सिद्धान्तसे प्राय सभी बड़े बड़े डाक्टर सहमत हैं। अभी हालमें एक बड़े भारी डाक्टरने कहा था कि, आजकल साधारणत लोग भोजनके बहाने जितने पदार्थोंका सत्तानाश करते हैं उनके तृतीयाशसे ही उनका काम बड़े आनन्दसे चल सकता है। यही नहीं बल्कि पदार्थोंके परिमाणमें जितनी न्यूनता होगी, तरह तरहके असख्य रोगोंमें भी उतनी ही कमी हो जायगी। जो लोग उक्त मतको बिल्कुल लचर समझते हो, उन्हें उचित है कि वे स्वय दो तीन सप्ताहोतक अपना भोजन घटाकर उसका शुभ परिणाम देख ले। बात यह है कि हम लोग अच्छी तरह जितना भोजन पचा सकते है उससे कहीं अधिक उदरस्थ कर लेते हैं। जो अश पच जाता है उसको छोड़कर बाकीका बिना पचा और अध-पचा अश जब आँतोंके द्वारा नीचे उतरने लगता है, तब उसमेंसे बहुतसे विकृत और दूषित अश बाहर निकलते हैं और विषके रूपमें परिवर्तित होकर हमारे रक्तमें मिल जाते हैं। उस दूषित अशके कारण हमारा रक्त बिगड़ जाता है और उससे शरीरमें तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। रक्त बिगड़नेके कारण शरीरमें रोगोंकी उत्पत्ति तो बादमें होती है। सबसे पहले विकारोंका जमघट आँतोंके नीचे पेडू आदिमें ही होता है। वहाँ उनमें एक प्रकारका उबाल आरम्भ होता है, जिसके कारण मनुष्यको या तो सग्रहणी हो जाती है या कब्जियत। अब कब्जियत कितने रोगोंकी खान है इसके यहाँ बतलानेकी विशेष

आवश्यकता नहीं है। पैखाने और पेशावकी शिकायत उत्पन्न होती है, सिरमें दर्द आरम्भ होता है और अतमे बुखारतककी नौवत आ जाती है। यह बुखार और कुछ नहीं, उन्हीं विकृत पदार्थोंको हमारे शरीरसे वाहर निकलनेका प्रयत्न है। बुखार विगड़कर जो भयकर रूप धारण करता है, उससे प्राय सभी लोग परिचित हैं। इस प्रकार अनावश्यक भोजनका वचाहुआ दूषित अश वाहर निकल्नेके लिए हमारे सारे शरीरमें चक्कर लगाया करता है और जिस अवयवमे पहुँचता है उसमे एक न एक विकार उत्पन्न कर देता है। आमाशय, हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क आदि सभी अवयव इस दूषित अशके शिकार वनते हैं और मनुष्यको गठिया, ववासीर, भगदर, कोढ़, कण्ठमाला और तरह तरहके बुखार अथवा इसी प्रकारके अन्य रोग आ घेरते हैं। यदि दूषित अश कम हुए तो पहले इन रोगोंके कृमि मात्र ही उत्पन्न होते हैं, जिनको आगे चलकर वढ़ते कुछ देर नहीं लगती। इन्हीं सव कारणोसे एक वडे विद्वानने वहुत जोर देकर कहा है कि–"अकालमें अन्नके अभावके कारण उतने लोग नहीं मरते, जितने सुकालमे अधिक अन्न खानेके कारण, तरह तरहके रोगोंसे, मर जाते हैं!"

अधिक भोजन करनेके कारण होनेवाली जो हानियाँ ऊपर वतलाई गई हैं, वे तो ऐसी हैं जिन्हे वहुत से साधारण वुद्धिके लोग भी जानते हैं। वड़े वडे डाक्टरोके मतसे अधिक भोजनके कारण मनुष्यके शरीर पर वहुत वोझ पडता है और उसे भोजनके अनावश्यक अशोको शरीरसे वाहर निकाल्नेके लिए वड़ा परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। अधिक भोजनसे शरीर पर चार प्रकारके वुरे प्रभाव पड़ते हैं —

(१) अधिक भोजनसे रक्त अस्वच्छ और विषाक्त हो जाता है, जिससे वहुतसे रोगोके उत्पन्न होनेकी सभावना हो जाती है।

(२) शरीरमे पहलेसे जो नया या पुराना रोग उपस्थित होता है, अधिक भोजन करनेसे उसका पोषण होता है और वह वढ़ जाता है।

(३) हमारे शरीरके ज्ञान-तन्तुओं (Nervous system) पर अधिक भोजन करनेके कारण वहुत जोर पड़ता है और उसकी सारी शक्ति दूषित अंश

या विषको बाहर निकालनेमें लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यके शरीरका बल नहीं बढता और उसका ओज क्षीण होने लगता है।

(४) बिना पचे हुए भोजनका जो दूषित अश बचा रहता है उसमेंसे विष निकल कर पेट और भेजेमे फैलता है, जिससे मनुष्यकी आरोग्यताका बहुत जल्दी जल्दी नाश होने लगता है।

आवश्यकतासे अधिक भोजनके साथ जितने अनर्थ और अपकार सम्मिलित हैं उतने कदाचित् ही और किसी दूसरे काममें सम्मिलित होगे। यह भ्रमपूर्ण विचार हमारे मनमे बहुत अच्छी तरह बैठ गया है कि हम जो कुछ खाते है वह सब हमारी बल-वृद्धिमें सहायक होता है, उसमेंका कोई अश वृथा नहीं जाता। यही कारण है कि हम लोग बिना इस बातका विचार किये कि हमे इस समय भोजन करनेकी आवश्यकता है या नहीं, हमारा पेट उसे ग्रहण करने और पचानेके लिए तैयार है या यहीं, दिनमे कमसे कम तीन बार खूब डटकर भोजन कर लेते है। इसी भ्रमपूर्ण विचारके कारण लोगोंकी यहाँ तक मिथ्या धारणा हो गई है कि यदि हम एक बारका भोजन भी बीचमें छोड दें तो हमारा शरीर ही न चल सकेगा हमारे सिरमें दर्द होने लगेगा, यहाँ तक कि हम चल फिर भी न सकेंगे। हम यदि दिनमें पाँच बार भोजनके करनेकी आदत डाले तो कुछ दिनोंमें ही हर बार भोजनके निश्चित समय पर हमें एक प्रकारकी भूख लग आया करेगी, पर वह कदापि सच्ची भूख नहीं होती, वह बनावटी या कृत्रिम होती है। हम लोग इसी बनावटी भूखके गुलाम बन जाते हैं, इतने गुलाम बन जाते है कि हममे उससे पीछा छुडानेका साहस ही नहीं रह जाता। आप एक बार भोजन न कीजिए, उससे आपको जो थोड़ा कष्ट होगा वह तो होगा ही, पर यदि यह बात आपके दोस्तोंको मालूम हो गई तो उन्हें आपका चेहरा 'बिलकुल उदास सूखा हुआ और पीला' दिखाई पडने लगेगा। क्यों ? इसी लिए कि वे स्वय भूखके गुलाम होते हैं। अब आप अपनी इच्छासे न सही तो कमसे कम उन दोस्तोंकी खातिर ही थोडा बहुत भोजन अवश्य कर लेंगे। पर आगे चलकर उसका जो दुष्परिणाम होगा उसका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता।

इस गुलामीसे बचनेका केवल यही उपाय है कि आप अपने मनको दृढ करें। सबसे पहले आपको इस बातका दृढ विश्वास हो जाना चाहिए कि आप बनावटी

भूखकी गुलामीमे पड़े हुए है और उसके फन्देसे वच निकलना आपका कर्तव्य है। जब आप यह बात अच्छी तरह समझ लेगे और भविष्यमे कभी अनावश्यक भोजन न करनेका दृढ सकल्प कर लेगे, तब आपको बनावटी भूखकी गुलामीसे छूटनेमें अधिक समय न लगेगा। ज्यो ज्यों आप उस बनावटी भूखकी गुलामीसे निकलनेका प्रयत्न करने लगेगे, त्यों त्यों आपको अधिक आनन्द और सुख होने लगेगा और आप अपने मित्रोंको भी अपना अनुगामी बनाने और कम भोजन करनेके लाभ समझानेका प्रयत्न करने लगेंगे।

आपने कुछ ऐसे लोग भी देखे होगे जो प्राय इस बातकी शिकायत किया करते हैं कि हमे तरह तरहके बढ़िया भोजनोंमें भी कोई स्वाद या आनन्द नहीं आता, अथवा आजकल भोजनमें हमारी रुचि नही होती। ऐसे लोगोंकी बातोंका वास्तविक तात्पर्य यही होता है कि भोजनका वास्तविक आनद लेनेमें वे नितान्त असमर्थ हो गये हैं। जिस मनुष्यका स्वास्थ्य सब प्रकारसे अच्छा होता है वह जो कुछ खाता है, सब रुचिसे खाता है। उसे अन्तिम कौर भी उतना ही स्वादिष्ट लगता है जितना कि पहला कौर। सब तरहसे नीरोग आदमीकी यही अच्छी पहचान है। तरह तरहकी मसालेदार चटनियों और अचारोंकी आवश्यकता उन्हीं लोगोंको पड़ती है जिनकी पाचनशक्ति किसी प्रकार नष्ट हो जाती है। अच्छी पाचनशक्तिवाले मनुष्यको अथवा वास्तविक भूखके समय बहुत ही साधारण भोजनका भी एक एक कौर अमृतके समान स्वादिष्ट और मीठा जान पडता है। और नहीं तो स्वादिष्टसे स्वादिष्ट पदार्थ भी एक प्रकारका बोझा जान पड़ता है और लोग उसे इस प्रकार खाते हैं, मानों वे बड़ी लाचारी या सकटमें पड़े हो। ऐसी अवस्थामें जबरदस्ती ठूसकर भोजन करना ही अच्छा है या उसे छोड़ देना, यह बात विचारवान् पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

रोगमें भोजन।

मनुष्यके शरीरमें जितने रोग हैं, उनमे बहुत अधिक संख्या ऐसे ही रोगोंकी है जिनका मूल कारण भोजनसम्बन्धी किसी न किसी प्रकारका दोष ही होता है, पर विलक्षणता तो यह है कि उन रोगोंमे भी रोगीको पूर्ववत् भोजन देकर उसके रोगकी वृद्धि की जाती है-क्योंकि मूल कारण और बढाया जाता है। रोगकी सहायता इसी सीमातक परिमित नहीं रहती बल्कि आगे चल कर और नये साधनोंसे भी होती है। रोगीको ओपधियोंके नामसे तरह तरहके सूफियाने विप खिलाये जाते हैं जो बहुधा रोगको दवा तो देते हैं पर उसके मूल कारणको कदापि नष्ट नहीं कर सकते। बहुतसे अवसरों पर तो यह भी देखा गया है कि उनसे और नये नये रोगोंकी सृष्टि होती है। ससारमे दिनपर दिन पुराने रोगोकी वृद्धि और नये नये रोगोंकी उत्पत्तिमे जितनी सहायता अधिक भोजन और ओपधियोंसे मिलती है उतनी और किसी दूसरी बातसे नहीं मिलती।

जब कोई मनुष्य रोगी होता है, उसकी रुचि भोजनकी ओर नहीं होती और उसकी जीभका स्वाद विगड़ जाता है, तब उसके मित्र, सम्बन्धी और चिकित्सक आदि उससे कहते हैं कि यदि तुम कुछ भी न खाओगे तो तुम्हारा शरीर क्योंकर चलेगा? तुम्हारे शरीरमे बल कहाँसे आवेगा? बिना किसी आधारके तुम जीते क्योंकर बचोगे? आदि। प्राय ऐसे अवसरों पर लोग रोगीको जबरदस्ती कुछ न कुछ खिला दिया करते हैं। पर वे लोग यह समझनेका कष्ट नहीं उठाते कि मुँह और जीभका स्वाद विगड जाने और भोजन करनेकी इच्छा न होनेका वास्तविक अभिप्राय क्या है? उसका वास्तविक अभिप्राय यही है कि रोगीका शरीर भोजनके बोझसे बचना और कुछ सुस्ताना चाहता है। उसके सबधी वैद्यों और डाक्टरोसे उसकी भूख बढानेका उपाय कराते हैं और चिकित्सक लोग उसे जबरदस्ती भोजन देते हैं। कभी कभी तो रोगीके शरीरमें भोजन पहुँचानेके लिए यन्त्रोंतकसे सहायता ली जाती है! बहुतसे वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंकी तो यहाँतक सम्मति होती है कि यदि रोगी कुछ भोजन न करेगा तो पाचनक्रिया करनेवाले रस उसकी उदरस्थ अँतड़ियोंतकको पचा डालेंगे? उनका सिद्धान्त है कि जब मनुष्यको भोजन नहीं मिलता तब उसका पोषण उसके शरीरके भीतरी

माससे होने लगता है, और इस प्रकारका पोषण उसके लिए विल्कुल ही अस्वाभाविक और अत्यन्त हानिकारक होता है। मासके वाद पचनेके लिए चरवीका नम्वर आता है और तदुपरान्त फेफड़ो और हृदयतककी नौवत पहुँचती है। मानो हमारा पेट कोई शेर या राक्षस है। कुछ डाक्टरोका यह भी कहना है कि मनुष्यके लिए पैखाना होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि मनुष्यको पैखाना न हो तो वहुतसे दूषित पदार्थ उसके शरीरके अन्दर ही रह जायँगे और वड़ा उपद्रव तथा अनिष्ट करेंगे। पैखाना विना कुछ भोजन किये होता नहीं और इस लिए प्रत्येक मनुष्यको नित्य भोजन मिलना वहुत आवश्यक है। एक दूसरे डाक्टरने तो प्रत्येक सशक्त मनुष्यके लिए चोवीस घंटेमे चार पाँच वार करके कोई दो सेर भोजन करनेकी आज्ञा दी है और कहा है कि यदि मनुष्यको इससे कम भोजन मिलेगा तो उसकी अँतड़ियोमे एक प्रकारके कीड़े पड़ जायँगे और वह वहुत शीघ्र मर जायगा!

पर वास्तवमें इन सव वातोका कोई विशेष अर्थ नहीं है। रोगियोंके सम्वन्धमें ये सव सिद्धान्त केवल कल्पित और माने हुए हैं और प्रत्यक्ष अनुभव करने पर जो प्रमाण मिले हैं वे सव इनके विरुद्ध हैं। अमेरिका और युरोपमें वहुतसे वड़े वड़े डाक्टरोंने सैकड़ों और हजारो रोगियोंको डेढ़ डेढ़ और दो दो महिनोंतक विना किसी प्रकारके भोजनके रखकर अन्तमें उनके रोगोका समूल नाश कर दिया है, यही नहीं वल्कि उपवास-कालके वीत जानेके उपरान्त वहुत ही थोड़े समयमें वे इतने स्वस्थ और सवल हो गये हैं कि स्वय उन डाक्टरोंको उन रोगियोकी दशा देखकर आश्चर्य हुआ है। आप पूछ सकते हैं कि जव मनुष्य दो दो महिनोंतक विना भोजनके रह सकता है तव एक दो सप्ताहमे ही अकाल आदिके समय हजारों आदमी क्यों मर जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि उपवास करने और भूखो मरनेमें वड़ा भेद है। वास्तवमे उपवास-कालमें मनुष्यका पोषण शरीरके निकम्मे और व्यर्थके वढ़े हुए पदार्थोंके द्वारा होता है। शरीरके मांसल भागोकी वारी वढ़े हुए पदार्थोंके समाप्त हो जानेके कई सप्ताह वाद आती है। उस वीचमें यदि मनुष्यको भोजन न मिले तो वह अवश्य मर जायगा। जिस समय मनुष्यके शरीरको वास्तवमे किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता हो अथवा उसे कुछ विशेष तत्त्व दरकार हो उस समय उसे भोजन आदि अवश्य मिलना

चाहिए। मनुष्यके शरीरको जिन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है यदि उसे वे तत्त्व न मिल कर दूसरे तत्त्व मिले तो भी वह अवश्य मर जायगा, क्यों कि उनकी आवश्यकतायें दूसरे तत्त्वोंसे पूरी नहीं हो सकेंगी, आवश्यक तत्त्वोंसे भिन्न चाहे जितने पदार्थ मनुष्यको मिले पर उनका काम उनसे न चलेगा और वह अवश्य मर जायगा। मनुष्यका भूखों मरना उसी समय कहा जा सकता है जब कि उसे वास्तविक भूख लगे और उसे भोजन न मिले। भूखों मरनेवालोंकी दूसरी सबसे अच्छी पहचान यह है कि, मनुष्यका पिंजर मात्र बच जाता है। यदि कोई रोगी बिना उपवासकी अवस्थातक पहुँचे ही बीचमें मर जाय तो उसकी मृत्युका कारण भोजनका अभाव नहीं, बल्कि रोगका बढ़ना आदि होगा।

रोग और चिकित्सा।

यह तो हुई भोजनकी बात, अब चिकित्साको लीजिए। आज कलकी चिकित्साप्रणाली वास्तवमें कैसी है, इसका अनुमान केवल दिनपर दिन बढ़ते हुए रोगों और रोगियोंकी बढ़ती हुई संख्यासे ही किया जा सकता है। और इस संख्यावृद्धिका मुख्य कारण औषधियोंकी भरमार है। वैद्यराज अपने रोगीको दिनभरमें तीन तरहकी गोलियाँ खिला देते हैं, दो दो तीन तीन अवलेह चटा देते हैं, एकाध चूर्ण दालतरकारियोंमें मिलाकर खानेके लिए देते हैं और एक चूर्ण इसलिए दे देते हैं कि रोगी उसे दिनमें दस बीस दफे फाँक लिया करे। हकीम साहबके काढे पकानेके लिए तो घरमें एक जुदा चूल्हा ही आवश्यक होता है। गोलियाँ और तरह तरहकी चटनियाँ इनसे अलग होंगी। डाक्टर लोग तो दो दो घंटे पर कडुए मिक्सचरोंके मारे रोगीको और भी परेशान कर देते हैं। ये सब ओषधियाँ रोगीके शरीरमें जाकर कुछ समयके लिए रोगको शान्त तो कर देती हैं, पर उसका समूल नाश करनेमें नितान्त असमर्थ होती हैं। आज जो रोग आपको हुआ है वह दस पाँच दिनोंमें ओषधियों या अन्य कारणोंसे दब तो अवश्य जायगा, पर साल छह महीनेमें एक नये रोगके साथ वह फिर उमड़ आवेगा। अब आपको एकके बदले दो रोगोंकी चिकित्सा करनी पड़ेगी। यदि किसी कोठरीमें कूड़ा करकट

जमा हो जानेके कारण बहुतसे मच्छड़ और कीडे मकोड़े पैदा हो जायँ तो हमे केवल उन मच्छडों और कीड़ोंको भगाकर ही सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए, बल्कि उस कूड़े करकटसे कोठरीको साफ करना चाहिए। रोगोकी दशा भी बहुत कुछ इसी प्रकारकी है। शरीरमें पहले तो बहुतसा दूषित पदार्थ एकत्र हो जाता है और फिर उससे तरह तरहके ऐसे तत्त्व उत्पन्न होते हैं जो अनेक प्रकारके रोगोका रूप धारण कर लेते हैं। ओषधियॉ बड़ी कठिनाईसे इन तत्त्वोका नाश करनेमें तो समर्थ हो जाती हैं, पर शरीरमें एकत्र हुए दूषित अशकी प्रकारान्तरसे वृद्धि ही करती हैं। सभी ओषधियोमे लाभदायक अश बहुत कम और हानिकारक अश बहुत अधिक होता है। लाभकारक अश तो ज्यों त्यो रोगसे युद्ध करके उसका शमन करता है, पर हानिकारक अश शरीरमें रहकर और नये नये रोगोकी वृद्धिमे सहायता देता है। यह बात नहीं है कि आज कलके अच्छे अच्छे चिकित्सक इस बातको न जानते हों। अब धीरे धीरे लोग रोगके वास्तविक कारण और हजारो तरहकी ओषधियोकी निरर्थकता समझने लगे हैं।

अब सबसे पहला प्रश्न यह है कि वास्तवमें रोग क्या है? यदि आजकलके चिकित्सकोसे यह प्रश्न किया जाय तो वे स्पष्टतः यह बात स्वीकार कर लेगे कि रोगोके वास्तविक कारण आदिके विषयमे हम लोग नितान्त अनभिज्ञ हैं। उनका उत्तर पाकर हमें यह मानना पड़ेगा कि रोगोंकी वास्तविकता अभीतक घोर अध-कारमें है और फलत उनके दूर करनेका कोई अच्छा साधन मिलना भी असम्भव है। यदि पाठकोको हमारे इस कथन पर विश्वास न हो तो वे किसी बहुत अच्छे डाक्टरसे उक्त प्रश्न कर सकते हैं। यदि आप कई अच्छे अच्छे डाक्टरोंसे यह प्रश्न करें तो आप पर हमारे कथनकी सत्यता और भी भली भॉति विदित हो जायगी। कोई डाक्टर अच्छी, तरहसे इस विषयमें आपका समाधान नहीं कर सकता कि रोग क्यो और किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, क्यो कुछ लोग सदा रोगी और कुछ नीरोग बने रहते हैं, क्यो एक रोगके बाद तुरंत ही उससे बिल्कुल ही भिन्न प्रकारका एक दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है, ओषधियॉ शरीरमे किस प्रकार और कैसा काम करती हैं और पौष्टिक औषधियोका हमारे शरीर-सगठन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसमे जरा भी सन्देह नहीं है कि अच्छे अच्छे डाक्टर इन विषयोमे स्वय ही कुछ नहीं जानते, वे आपके प्रश्नोका उत्तर क्या देगे?

आजकल डाक्टरोंके निदानकी बडी तारीफ सुनी जाती है। पर क्या कोई डाक्टर किसी रोगको पहचानकर उसका समूल नाश भी कर सकता है? केवल निदानसे ही काम नहीं चल सकता, चिकित्सकका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि रोग रुके और उसका समूल नाश हो जाय, पर जब उसे रोगका मूल कारण ही न मालूम होगा तब वह उन्हे दूर किस प्रकार कर सकेगा? न्यूयार्कके एक बहुत बडे डाक्टरी कालेजके अध्यापक डा० आस्टिन फ्लिंट एम डी. एल एल. डी ने अपने एक ग्रन्थमें यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर ली है कि रोग और आरोग्यताकी व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। एक दूसरे दिग्गज डाक्टरका मत है कि चाहे लोग यह बात सुनकर भले ही हँस दें पर मै इतना अवश्य कहूँगा कि रोग और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमे हम लोगोंका कोई निश्चित सिद्धान्त ही नहीं है और कमसे कम मेरा यह विश्वास है कि हम लोगोंको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शरीर पर औषधियोंका क्या और कैसा प्रभाव पडता है।

इसी प्रकार और भी अनेक बडे बडे डाक्टरोंके कथनोंसे यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि आजकलका चिकित्सक-वर्ग रोगोंके वास्तविक स्वरूप और कारणों आदिमे एकदम अनभिज्ञ है। नये डाक्टर जो अभी हालमे कालेजमे निकले हों और जिन्हें किसी प्रकारका अनुभव न हो, भले ही इस बातका गर्व कर सकते हैं कि हम रोगोंके विषयमें सब बाते जानते और उन्हें तुरत दूर कर सकते हैं, पर कोई अनुभवी चिकित्सक ऐसी बाते कभी न कहेगा। एक बडे भारी प्रोफेसरका मत है कि ज्यों ज्यों डाक्टरका अनुभव बढता जायगा, त्यों त्यो वह औषधियोंकी निरर्थकता और प्रकृतिकी प्रधानता समझता जायगा। डाक्टर लोग जितने ही अधिक रोगो और रोगियोको देखते हैं, औषधियोके गुणो परसे उनका विश्वास उतना ही हटता जाता है।

आजकलका चिकित्सा-विज्ञान जब रोगकी वास्तविकता ही नहीं जानता, तब वह उसका इलाज क्या करेगा? जिन रोगोंके विषयमें हम स्वय कुछ नहीं जानते उन्हें हम दूर कैसे कर सकेंगे? ऐसी अवस्थामें यह मानना पडेगा कि आजकलकी चिकित्साप्रणाली बिलकुल अटकल-पच्चू है और डाक्टर लोग अपने रोगियों पर औषधियोंकी केवल परीक्षा ही करते हैं। रोगो आदिके सम्बन्धमें आजकल जितने नये आविष्कार होते है वे सब शुभ और उन्नतिके लक्षण माने जाते हैं, पर

वे ही आविष्कार डाक्टरोंको और भी अधिक भ्रममे डालते हैं—उन्हे ठीक मार्गसे और भी दूर ले जाते है।

समस्त ससारके सव प्रकारके चिकित्सक दो भागोंमें वाँटे जा सकते हैं। एक भागमें तो होमियो और एलोपैथी आदि प्रणालियों पर चिकित्सा करनेवाले डाक्टर, मिस्मोरिज्म या विजलीकी सहायतासे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक, यूनानी और मिस्त्रानी हकीम, वैद्य तथा सव प्रकारके दूसरे चिकित्सक आजाते हैं और दूसरे भागमें हम उन चिकित्सकोंको रखते है जिनके सिद्धान्त उक्त सव प्रकारके चिकित्सकोंसे एक दम भिन्न हैं और जो केवल प्राकृतिक उपायोंसे ही रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। रोगोंकी उत्पत्ति और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें इन दोनों श्रेणियोंके चिकित्सकोंका सिद्धान्त एक दूसरेसे वहुत ही भिन्न है। पहले वर्गके चिकित्सकोंका तो विश्वास है कि रोग हमारे वडे भारी शत्रु हैं जो हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अंगों पर अधिकार करके हमारी शक्तियोंसे युद्ध करते हैं, इन अदृश्य शत्रुओके लिए हमारी ओपधियॉ, गोलियॉ और गोलोका काम करती है। पर दूसरे वर्गका कहना है कि सव प्रकारके रोग और उनके लक्षण आदि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेमें मित्रभावमे सहायक होते है। जव हमारा स्वास्थ्य विगड जाता है तव हमारे अवयव उसकी सूचना देने और उसे सुधारनेके लिए उन लक्षणोंको उत्पन्न करते हैं, जिन्हें हम रोग कहते हैं।

हमारे शरीरका संगठन ही ऐसा है कि वह यथासाध्य उत्पन्न होनेवाले दोपोंको स्वय ही दूर करता रहता है। जव हमारे शरीरकी स्वाभाविक स्थितिमे किसी प्रकारकी अव्यवस्था होती है तव उसकी सूचना हमें रोगके रूपमें मिलती है। अच्छे चिकित्सकका यही कर्त्तव्य है कि वह शरीरको उसकी स्वाभाविक स्थितिमे ले आवे। शरीरके स्वाभाविक स्थितिमें आते ही रोग आपसे आप नष्ट हो जायगा और रोगी चंगा हो जायगा। दोनों वर्गोंकी चिकित्साप्रणालियोंमें अंतर यह है कि एक वर्ग तो रोगोंके नाशके लिए परिश्रम करता है और दूसरा वर्ग रोगीको अच्छा करनेके लिए। एक ही रोगको दूर करनेके लिए कुछ विशिष्ट ओपधियॉ दी जाती हैं, इस वातका ध्यान नहीं रखा जाता कि रोगी पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त यह है कि रोगको छोड़ कर उसके कारणका नाश किया जाय, जिसमे रोगी अच्छी तरह स्वस्थ हो जाय। ओपधि-

योंसे रोगोंको दवाने, उनका मुकावला करने और उन्हें मार भगानेका प्रयत्न किया जाता है। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त है कि रोग हमारा स्वास्थ्य सुधारनेके कारण या प्रयत्न होते हैं। उन्हें दवाना या नष्ट करना न चाहिए वल्कि उनके मार्गमें सुविधा उत्पन्न करके स्वस्थ और नीरोग होजाना चाहिए। यह उद्देश्य विना किसी प्रकारकी ओपधियोंके ही वहुत अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

एक वडे डाक्टरका मत है कि यह समझना वडी भारी भूल है कि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेवाले साधन हमारे शरीरके वाहर किसी डिविया या वोतलमें वन्द हैं, वह साधन, वह शक्ति तो स्वयं हमारे शरीरके अन्दर है। सव लोग नित्य देखते हैं कि जख्म आपसे आप भरते हैं, पर तो भी वे प्रकृतिके इस गुणको नहीं समझते। * मनुष्यको चाहे किसी प्रकारका रोग हो, उसे किसी प्रकारकी ओपधिकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे रोग अच्छा नहीं हो सकता। आवश्यकता केवल इसी वातकी है कि प्रकृति हमें जिस स्थितितक पहुँचाना चाहती हो, हम स्वयँ उस स्थितितक पहुंच जायँ। हमें चंगा करनेका काम हमारी जीवन-शक्ति स्वयं कर लेगी।

गिरने, पडने अथवा इसी प्रकारके और कारणोंसे जो चोटें आदि लगती हैं, उनको छोडकर रोगोंके दो ही मुख्य कारण हो सक्ते हैं। एक तो यह कि कोई विषाक्त या गन्दा पदार्थ वाहरसे किसी प्रकार हमारे शरीरमें पहुँच जाय या दूसरे यह कि वह स्वयं हमारे शरीरमे पडे हुए दूपित या निरर्थक पदार्थोंके कारण उत्पन्न हो। दोनों दशाओंमें उनके कारण हमारे शरीरके कामोंमे रुकावट पड़ती है।

रोग क्या है? केवल उन रुकावटोंको दूर करने और उनके कारण होनेवाली हानिको पूरा करनेके साधन या प्रयत्न हैं। रोग केवल शरीरके दोप दूर करने और उसे शुद्ध वनानेकी एक क्रिया है। हमारी शारीरिक शक्ति स्वयं उन रुकाव-

* पहले वडे वडे जख्मोंको चंगा करनेमें तरह तरहकी ओपधियोंसे सहायता ली जाती थी, पर जव ओपधियाँ निरर्थक ही नहीं वल्कि हानिकारक सिद्ध हुईं, तव डाक्टरोंको लाचार होकर Dry dressing की शरण लेना पडी। आजकल अच्छे डाक्टर जख्मोंको केवल धोकर उपरसे पट्टी वाँधे देते हैं और इस क्रियासे जख्म वहुत जल्दी भर जाते हैं।

होंको दूर करने और अपने कामोंमे सुविधा उत्पन्न करनेका प्रयत्न करती है । क्या इस प्रयत्नको जो सव प्रकारसे हमारे लिए हितकारी है, जो हमारे जीवनको वनाये रखनेके लिए होता है, जो हमे शरीरके भीतरी शत्रुओंसे बचाता है, तरह तरहके जहरीले तेजावों, शराव मिली हुई ओषाधियों, जुलावों और भफारों आदिसे रोकने या दवाने आदिकी आवश्यकता है ?

जो वात मनुष्यजातिकी समझमें सैकडों पीढ़ियोसे दृढ़तापूर्वक जमी हुई है, वह सहजमें या तुरंत ही दूर नहीं की जा सकती । ऐसे अवसरों पर लोगोंमें वहुत अधिक पक्षपात पाया जाता है । जिस प्रकार सगीत, काव्य या किसी और ललित–कलाका पूरा पूरा आनन्द सव लोग नहीं ले सकते, उसी प्रकार किसी विषय पर पक्षपात छोड़कर विचार करने और सत्यका पक्ष ग्रहण करनेके लिए भी सव लोग तैयार नहीं हो सकते । वहुधा वातोकी सत्यताका विश्वास क्रमश ही होता है, एकदमसे नहीं हो सकता । साथ ही इस प्रकारके गूढ़ विषय केवल *समझानेसे ही मनमें नहीं वैठ सकते, मनुष्यको उनके अनुकूल आचरण* करते करते जव उसका अच्छी तरह अभ्यास पड़ जाता है, तभी वह उसकी उपयोगिता समझ सकता है, अन्यथा नहीं । इसलिए विचारवान् पाठकोंको इस विषय पर पहले तो अच्छी तरह मनन करना चाहिए और तदुपरान्त परीक्षा और अनुभव करना चाहिए । यदि पाठक पक्षपात छोडकर इस स्थलपर वतलाई हुई वातोका विचार करेगे तो हमें आशा है कि उनकी उपयोगिता अवश्य ही उनकी समझमें आ जायगी ।

चिकित्साके दोष ।

यह वात पहले ही वतलाई जा चुकी है कि अनेक कारणोंसे हमारे शरीरमें जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषोको दूर करनेके लिए हमारी शारीरिक शक्तियाँ स्वय प्रयत्न करने लगती हैं और उसी प्रयत्नके चिह्नोंको हम ‘रोग’ कहते हैं । दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न शरीरके भीतर आपसे आप होता रहता है । हमें ऊपर उसके लक्षण मात्र दिखाई देते हैं । एक विद्वान्का मत है कि रोग

ही हमारा स्वास्थ्य बनाये रहता और हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है। जो विष हमारे शरीरमें रहकर हमारा बहुत अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उन्हीं विषोंको बाहर निकालनेकी क्रियाका नाम रोग है। वैलेर नामक एक बडे प्रसिद्ध डाक्टरने हैजेके सम्बन्धमें एक बडी पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें आपने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि रोगोंको सक्रामक समझ कर उनकी सक्रामकता दूर करनेके लिए आजकल ओषधियो आदिके द्वारा जितने प्रयत्न किये जाते हैं वे ही प्रयत्न रोगोको फैलाने और बहुत अधिक मनुष्योंके प्राण लेनेके कारण होते हैं। जिन दिनों सक्रामकता दूर करनेके लिए इतनी अधिक ओषधियोंका प्रचार नहीं हुआ था, उन दिनों स्वय रोग ही बहुतसे मनुष्योंके प्राण बचा लेता था।

पुराने ढंगकी जितनी चिकित्सा-प्रणालियाँ हैं उनमेंसे बहुधा ऐसी ही हैं जिनमें रोगके ऊपरी चिह्नोंको ही रोग समझकर उन्हें नष्ट करनेके प्रयत्न होते हैं। इस प्रकार मानों उन क्रियामें बाधा डाली जाती है जो हमारे शरीरको शुद्ध करनेके लिए होती है। जब हम ओषधियों आदिसे उन क्रियाको रोकने या दबाने आदिका प्रयत्न करते हैं तब उस क्रियामें बडी बाधा पडती है जो हमारे शरीरके भीतर हमे नीरोग करनेके लिए आप-ही-आप प्राकृतिक कारणोंसे होती है। चिकित्सा करके हम उससे जितना लाभ समझते हैं वास्तवमें हमारी उतनी ही हानि होती है। हमें दो एक दिन बुखार आवे और किसी ओषधिकी एक या दो मात्रासे ही हमारा बुखार रुक जाय तो हम यही समझते हैं कि उस ओषधिसे हमारा बडा उपकार हुआ। पर वास्तवमें उससे होता हमारा अपकार ही है। हमारे शरीरका जो विष बाहर निकलना चाहता था वह उस ओषधिके कारण रुक गया। आगे चलकर शरीरमे वह जो अनर्थ न करे सो थोडा है। यदि वह ओषधि तुरत ही हमारा बुखार रोक न दे तो भी वह हमारा अपकार ही करेगी, उससे हमारा शरीर बहुधा बिगड़ेगा ही, और हमे अच्छे होनेमें दो चार दिनके बदले महीनों लग जायँगे।

रोगके जिन ऊपरी चिह्नोंको हम रोग समझते हैं वास्तविक रोग उन चिह्नोंका कारण मात्र होता है। यह बात स्वत सिद्ध है कि हमारी सभी शारीरिक क्रियाये हमारे शरीरके दोषोको दूर करती हैं। ऐसी दशामें हमें उचित तो यह है कि हम यथासाध्य अपने शरीरको उस स्थितिमें ले जायँ जिसमें हमारी शारीरिक

क्रियाओंको दोप दूर करनेमें पूरा पूरा सुभीता हो। वास्तवमें रोगकी उत्पत्ति उन्हीं विपोसे होता है जो हमारे शरीरमें एकत्र हो जाते है। इन विपोके एकत्र हो जानेकी सूचना हमें समय समय पर सिरदर्द कब्जियत अथवा इसी प्रकारकी और शिकायतोंसे होती है। वहुधा लोग इस लिए नहीं मरते कि उन्हें रोग हो जाते हैं, वल्कि वे इसलिए मरते हैं कि उनके शारीरिक सगठनको इतना अवसर या सुभीता ही नहीं दिया जाता कि वह उन विषोको निकाल वाहर करे। इस विषयमे वहुत वड़े वड़े डाक्टर सहमत हैं कि आजकल रोगोंके वास्तविक कारणो पर किसीका ध्यान जाता ही नहीं, सव लोग उनके ऊपरी चिह्नोंको नष्ट करनेमें लगे रहते हैं। मरण और रोग देखनेमें भले ही आकस्मिक जान पड़ें पर वे वास्तवमे आकस्मिक नहीं होते। इन दोनोंके मूल कारणोंकी वहुत वडी शृखला होती है और उस शृखलाकी अतिम कड़ी रोग या मृत्युके रूपमें प्रकट हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी रोगके वास्तवमें नष्ट होनेके लक्षण क्या हैं और उनके कारणोंका निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? यदि किसी मनुष्यको गठिया हो और उसे तरह तरहके तेल मले जायँ तो रोगीके अग खुल जाते हैं। उस दशामें यह क्यों न माना जाय कि रोगका वास्तविक कारण नष्ट हो गया? यदि रोगीको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देने अथवा उसे खुली हवामें रखने, पथ्य कराने और स्वाभाविक चिकित्साके इसी प्रकारके दूसरे उपायोसे वह नीरोग हो जाय तो इसी वातका क्या प्रमाण है कि रोगके वास्तविक कारणका ही समूल नाश हो गया? जिस प्रकार आप कहते हैं कि औषधियोंसे रोगके चिह्न मात्र दव जाते हैं, उसी प्रकार आपकी चिकित्साके विषयमे भी यह क्यों न कहा जाय कि उससे ऊपरी लक्षण मात्र दवे हैं और रोगका मूल कारण शरीरमें वना हुआ है।

पर थोड़ासा विचार करनेसे इस प्रश्नका उत्तर सहजमें ही निकल आता है। चाहे आप इस वातको स्वीकार करें और चाहें न करें, पर इसमें सन्देह नहीं कि ओपधियाँ रोगके लक्षणोको ही दूर करनेके अभिप्रायसे दी जाती हैं। पर व्यायाम और पथ्य आदिका उन चिह्नोंपर कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होता। वे केवल हमारे शारीरिक-संगठनके लिए उपकारक हैं। जव विना उन लक्षणोंको दूर करनेके प्रयत्नके ही उनका नाश हो जाय तो यह वात निर्विवाद रूपस सिद्ध हो जायगी

रोगोंकी एकता।

इन सब बातो पर विचार करनेसे केवल एक ही परिणाम निकलता है। जब हम यह बात मान लेते हैं कि शरीर अपने भीतरके विकृत और दूषित पदार्थोंको समय समय पर बाहर निकालनेका प्रयत्न किया करता है तब हमें यह भी मानना पड़ता है कि सेकड़ो हजारो तरहके रोगोंका मूल कारण केवल एक ही है। उसी एक कारणका कार्य्य सैकडो हजारों रूपोंमें प्रकट होता है। वास्तवमें रोग केवल एक ही होता है और जिन्हें हम रोग मानते हैं वे उसके भेद या रुपान्तर मात्र हैं। जर्म्मनीके डाक्टर लुई कूनेने इस विषयपर एक बहुत बडी पुस्तक * लिखी है जिसमे यह बात भली भाँति सिद्ध की गई है कि रोगोंका वास्तविक और मूल कारण केवल एक ही है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत बड़े बड़े डाक्टरोंने एक मत होकर यह बात स्वीकार की है। यदि उन लोगोके मत और कथन आदि सग्रह किये जायँ तो एक स्वतत्र पुस्तक बन सकती है। उन मतोंको उद्धृत न करके हम युक्ति द्वारा ही इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे।

हमारे शरीरका प्रत्येक अवयव एक दूसरेसे सम्बद्ध है। रक्तका सचालन उन सब अगोंमे समान रूपसे होता है। इस प्रकार रक्त हमारे सारे शरीरको 'एक' बनाये रहता है। चाहे ऊपरसे देखनेमें यह बात न मालूम पड़े, पर वास्तवमें हमारा कोई अङ्ग अकेला ही रोगी नहीं हो सकता। जब कोई एक अग रोगी होगा तब उसका प्रभाव शेष सब अंगों पर भी कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा। किसी एक अगको रोगी और शेष सब अगोको नीरोग समझना बड़ी भारी भूल है। या तो वह रक्तके कारण और या शारीरिक संगठनके कारण शेष अगोंको कुछ न कुछ दूषित अवश्य कर देगा। सर्वसाधारण केवल डाक्टरोंके जोर देने पर ही यह बात मानते हैं कि एक अगके रोगी होनेके कारण शेष अग रोगी नहीं हो जाते।

इसी प्रकार विना शेष सब अगोकी क्रियाओं पर प्रभाव डाले हुए हम किसी एक अगके काममे दखल नही दे सकते। हमारा सारा शारीरिक सगठन भिन्न भिन्न अवयवो पर और हमारा प्रत्येक अवयव हमारे शारीरिक संगठन पर इस

---

* हिन्दीमे भी 'आरोग्यता प्राप्त करनेकी नवीन विद्या' के नामसे उसका अनुवाद हो चुका है।

प्रकार अवलम्बित है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध किसी प्रकार छुड़ाया ही नहीं जा सकता। इसी लिए बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि कोई रोग एकांगी नहीं होता। जब मनुष्यके शरीरमें ऊपरी या बाहरी पदार्थोंके कारण कोई दोष उत्पन्न होता है तब उस दोषको दूर करनेके लिए कुछ विशेष शक्तिकी आवश्यकता होती है, शरीरको उसके दूर करनेके लिए असाधारण बल लगाना पड़ता है। यदि हमारे शरीरमे वह आवश्यक शक्ति न हो अथवा आवश्यकतासे कम हो तो वह दोष दूर न हो सकेगा और हमारे शरीरके लिए साधारण स्थितिमें रहना असम्भव हो जायगा। यह दशा जब कुछ अधिक समय तक बनी रहेगी तब वह दोष कोई विशेष रूप धारण करके हमारे किसी अगमें घर कर लेगा। चोट चपेट लगने, अगोंके विकृत हो जाने अथवा बहुत तेज विष खाये जानेकी अवस्थाओंको छोड़कर शेष सब अवस्थाओंमे रोगोंके जो चिह्न दिखाई पड़ते है, उनका मुख्य कारण यही होता है। इसी लिए एकांगी रोगोंको अच्छे अच्छे डाक्टर कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानते और उनका विश्वास है कि उन रोगोंकी अलग अलग चिकित्सा करनेकी अपेक्षा सारे शरीरकी दशा सुधारना कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक है

एकागी रोगोंकी धारणा वास्तवमें अज्ञान और अदूरदर्शिता आदिके कारण ही हुई है। हमारा सारा शारीरिक सगठन एक ही सूत्रमें सम्बद्ध है और उनका इस प्रकार सम्बद्ध होना आवश्यक भी है। आजकल रोगोंको एकांगी समझ कर जो चिकित्सा की जाती है वह शरीरके रोगी अगमेसे या तो वास्तविक रोगके लक्षणोंको दूसरे अगोंमे परिवर्त्तित कर देती है और या उन्हें वहीं और भीतरी अगोंमे दबा देती है। चिकित्सकोंको इस बातका ध्यान ही नहीं होता कि जिन्हें वे एकागी रोग समझते है वे वास्तवमे सारे शरीरके किसी दोषके लक्षण मात्र है। रोगोंको एकांगी समझ कर उनकी चिकित्सा करना केवल निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक होता है। सबसे अच्छा और उचित उपाय उनके मूलकी ही चिकित्सा करना है। यहाँ कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि शरीरकी सारी पीड़ाओंकी जड रक्तका दोष है और यह दोष उसी चिकित्सासे दूर हो सकता है जिसका प्रभाव हमारे समस्त शारीरिक सगठन पर पड़े, जो हमारे रक्त और शरीरको उसकी साधारण और वास्तविक स्थिति तक ला सके। जब शरीरकी इस प्रकारकी चिकित्सा हो जायगी तब अवश्य ही हमारा प्रत्येक अंग स्वस्थ और

नीरोग हो जायगा । अन्य सिद्धान्तोंकी अपेक्षा यह सिद्धान्त इतना युक्तिसंगत है कि प्रत्येक विचारशील पुरुष इसे तुरन्त ही स्वीकार कर लेगा, और आगे चलकर जब वह इसके अनुसार आचरण करके अनुभव करेगा तब उसपर इस प्रणालीकी उपयुक्तता और भी दृढतासे सिद्ध हो जायगी।

अँगरेजी आदि भाषाओंमें बहुतसा ऐसा साहित्य है जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि ओषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक भी होती हैं, पर स्थानाभावके कारण हम उस विषयको यहाँ नहीं छेड़ते । न जाने ओषधियोंके कारण चंगे होनेकी नष्ट धारणा लोगोंमें कहाँसे और कैसे उत्पन्न हो गई, बहुत सम्भव है कि इसकी उत्पत्ति अज्ञानकालमें ही हुई हो । आजकल जितने अनिष्टकारक विश्वास फैले हुए हैं, इसका नंबर उन सबसे चढा बढा है । ओषधियों पर इस प्रकारके मिथ्या विश्वासका कारण यह है कि लोगोको प्रकृति और रोगके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं है । एक बार जब हमारे विचार इस सम्बन्धमे बदल जायँगे तब पुरानी प्रणालीकी भयकरता आपसे आप हमारी आँखोके सामने नाचने लगेगी । जब हम एक बार रोगका वास्तविक स्वरूप समझ लेंगे—जब हमें यह मालूम हो जायगा कि वह स्वय हमारे शरीरको नीरोग करनेकी एक क्रिया है तब हमें ओषधियाँ आदि खाकर उसे दूर करनेकी आवश्यकता ही न रह जायगी । केवल एक इसी सिद्धान्तको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद लोग सदाके लिए ओषधि-चिकित्साका त्याग और तिरस्कार कर देंगे ।

ओषधियोंका प्रभाव ।

साधारणत सब लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंसे रोग दूर हो जाते हैं । ओषधियाँ इसी उद्देश्यसे दी जाती हैं और इसी उद्देश्यसे खाई जाती हैं । रोगोंके सम्बन्धमें लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंकी सहायतासे हम उन्हें दबा, निकाल या नष्ट कर सकते हैं । मनुष्यकी यह मिथ्या धारणा बहुत प्राचीन कालमे हुई थी और वही धारणा अब तक बराबर चली आती है । पर विज्ञान तथा आरोग्यता-शास्त्रके आजकलके नये सिद्धान्तोंने उस धारणासे होनेवाले दोष ढूँढ़ निकाले हैं । आजकलके तर्क और युक्ति-वादके सामने ओषधियोंकी

उपयोगिता नहीं ठहर सकती। इस स्थलपर हम यह दिखालानेका प्रयत्न करेंगे कि ओपधियाँ वास्तवमें क्या हैं, हमारे शरीरपर उनका क्या प्रभाव पड़ता है और बड़े बड़े डाक्टरोंकी उनके सम्बन्धमें क्या सम्मतियाँ है।

सबसे पहली बात तो यह है कि ओपधियाँ विष हैं। या तो वे स्वयं विष होती हैं और या हमारे शरीरके अन्दर पहुँच जानेके कारण ही विप हो जाती हैं। इस सम्बन्धमें इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भोजनके अतिरिक्त शेष जितने पदार्थ हमारे शरीरके अन्दर प्रवेश करते हैं वे सब विप हैं। सुप्रसिद्ध डाक्टर ट्रालका मत है कि सब प्रकारकी ओपधियाँ चाहे वे खनिज हों, पशुजन्य हों अथवा वनस्पति-जन्य हों विपके सिवा और कुछ नहीं है। जिस वस्तुसे हमारे शरीरका पोषण नहीं हो सकता वह हमारे शरीरके लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकती। एक विद्वान्का मत है कि ससारमे क्रमश जीव, वनस्पति, खनिज पदार्थ और तत्त्व हैं। इनमेंसे प्रत्येकका धर्म है कि वह अपनेसे उच्चतरका पोषण करे। खनिज पदार्थोंसे ही वनस्पतिका पोषण हो सकता है, वनस्पतिसे खनिज पदार्थोंका कोई उपकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वनस्पति ही जीवका पोषण कर सकती है, जीवोंसे वनस्पतिका पोषण नहीं हो सकता। वनस्पतिसे भिन्न जितने जड़ पदार्थ हैं वे कभी जीवोंके शरीरमें जाकर उनका कोई उपकार नहीं कर सकते। इसी लिए खनिज अथवा अन्य जड पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचते ही उसके लिए विष हो जाते हैं। इस सिद्धान्तको आजकलके विज्ञानने बहुत अच्छी तरह मान लिया है और उसकी सत्यतामें किसी प्रकारका विवाद नहीं रह गया। ओपधियों द्वारा चिकित्सा करनेवाले लोग तो रोग दूर करनेकी कामनासे रोगीके शरीरमें और भी अधिक विष प्रविष्ट करा देते हैं, वे रोगको क्या दूर करेंगे। इस प्रकार ओपधियोंसे रोगीकी दशा और भी बुरी हो जाती है।

जो पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचकर नियमित रूपसे नहीं पच सकता और जिससे हमारे शरीरका पोषण नहीं हो सकता, वह पदार्थ अवश्य ही हमारे शरीरके लिए विजातीय और फलत विप है। हमारे शरीरके लिए ओपधियाँ या तो स्वयं विजातीय होती हैं और या रूप-परिवर्त्तनके कारण विजातीय बन जाती हैं और इसी लिए उनसे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँचती है। जो पदार्थ हमारे शरीरके

लिए इसप्रकार हानिकारक है उन्हें जानबूझकर और वह भी रोग दूर करनेके उद्देश्यसे, शरीरके भीतर पहुँचाना कहाँकी बुद्धिमत्ता है ?

पर प्राकृतिक चिकित्सामे यह बात नहीं है। वह स्वयं हमारी शारीरिक शक्तियोमें ऐसा परिवर्त्तन कर देती है कि वे सब प्रकारके विषोंको अनायास ही नष्ट करके उनका शेष अंश बाहर निकाल देती हैं। किसी साधारण दरदको लीजिए। डाक्टरी चिकित्सामे उसे दूर करनेका सिद्धान्त बहुत ही विलक्षण है। शरीरके किसी अंगमें पीडा होती है, वह पीड़ा चाहे जिस प्रकार हो दूर होनी चाहिए। उसे दूर करनेके लिए पिचकारियोंकेद्वारा पीडित अंगमे अफीमका सत या इसी प्रकारका और कोई विष पहुँचाया जाता है। अंग जड़ हो जाता है, पीड़ा छूट जाती है, डाक्टर समझता है कि रोगी अच्छा हो गया और रोगी समझता है कि रोग जाता रहा। पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए, फिर उसके कारणोंका पता लगाने और उन्हें दूर करनेसे मतलब ?

पर क्या आप इसे वास्तवमें चिकित्सा कह सकते हैं ? इसमे रोगके लक्षण मात्रको दवा देने और साथ ही शरीरके अन्दर बहुतसा विष पहुँचा देनेके अतिरिक्त ओर क्या होता है ? पीड़ा वास्तवमे किसी शारीरिक दोषका चिह्न होनी चाहिए। प्रकृति मूर्ख नहीं है, उसमें बिना किसी कारणके कार्य्य नहीं हो सकता। यदि शरीरके किसी अंगमे पीड़ा उत्पन्न हो तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा, चाहे हमें उस कारणका पता चले और चाहे न चले।

पीड़ा तो किसी दोषका चिह्न मात्र है वह स्वयं कोई चीज नहीं है। क्या इस चिन्ह मात्रको दवा देनेसे उसके कारणका भी नाश हो सकता है ? कभी कभी दरद दूर करनेके लिए अंगोंमें छाले डाले जाते हैं और कभी फसद खुलवाई जाती है। हमारी प्रकृति तो जोर जोरसे चिल्लाकर हमें दोषोकी सूचना दे और हम गला घोंट कर उसे चुप कराये ! हमारा ज्ञान-तन्तु तो हमें सूचना दे कि हमारे शरीरमें शत्रु आ पहुँचा है और दरदकी भाषामें वह हमसे सहायता मांगे और चिकित्सक तरह तरहके विषो और अत्याचारोसे उसका मुँह बन्द करके कहे कि मैंने रोगीको चंगा कर दिया ! यह रोगीके प्राण लेकर उसे नीरोग करना नहीं तो और क्या है ? इस सम्बन्धमे डा० ट्रालने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है—"ओषधियोंसे और नये रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिए ओषधि देना मानों एक और रोग उत्पन्न-

करना है । ओषधियोंसे एक रोग तो अवश्य दब जाता है पर और अनेक रोग
उत्पन्न भी हो जाते हैं । क्या कारणोंसे कारण दूर हो सकते हैं ? क्या विप
निकालनेमे विप सहायक हो सकता है ? क्या विकारोसे विकार नष्ट हो सकते
हैं ? क्या प्रकृति एककी अपेक्षा दो दोपोको सहजमें दूर कर सकती है ? कदापि
नहीं । " विपोंसे रोगोंको अच्छा करनेकी आशा रखना भूतोंसे मुरादें माँगना है ।

दस्त, कै, या पसीना आदि लानेवाली दवाओंके विपयमे अवश्य ही यह कहा
जा सकता है कि वे वहुतसे विकृत पदार्थ शरीरसे वाहर निकाल देती हैं, पर
उनका भी कुछ न कुछ दूपित अश शरीरमें रह ही जाता है । जुलाव लेनेसे लाभके
अतिरिक्त होनेवाली हानियाँ भी कम नहीं हैं । इन हानियोंका अनुभव उन लो-
गोंको और भी अच्छी तरह हो जाता है जो सालमें एक या दो वार नियमित
रूपसे जुलाव लेनेके अभ्यस्त हो जाते हैं । दस्त, कै या पसीने आदिके मार्गसे
जो विकार ओपधियोंकी सहायतासे शरीरके वाहर निकाला जाता है वही विकार
जल-चिकित्साके कई उपायोंसे भी, शरीरको विना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये
ही निकाला जा सकता है ।

औषधियोंके विपयमें यह कहा जाता है कि वे शरीरके भीतर उसके भिन्न भिन्न
अगों—मस्तक, पेट, आँत, गुरदे, जिगर, चमडे आदि—पर अपना प्रभाव डालती
है और उनके द्वारा दस्त, पेशाव, पसीने, या कै आदिके रूपमे शरीरके विकृत
पदार्थोंको वाहर निकालती है । पर डाक्टर ट्रालका मत है कि, ओपधिका शरीर
पर कोई प्रभाव नहीं पडता । वास्तवमें हमारी प्रकृति स्वय उन्हीं ओपधियोको
जितने सहज मार्गसे शरीरके वाहर निकाल सकती हैं, निकाल देती हैं, और लोग
उन्हीं औपधियोंको उन अगो पर प्रभाव डालनेवाली वतलाते हैं । जिस ओपधिको
हमारी प्रकृति कै द्वारा सहजमें वाहर निकाल सकती है वह औषधि कै लानेवाली
समझी जाती है और जिस ओपधिको हमारी प्रकृति दस्तोंके द्वारा वाहर निका-
लना उत्तम समझती है उसीको लोग दस्तावर समझ लेते हैं । वास्तवमें ओपधि-
योंका शरीर पर कोई विशेप प्रभाव नहीं पडता । *

स्थानाभावसे इस सम्वन्धमें यहाँ प्रमाण आदि नहीं दिये जा सकते हैं । जो लोग
प्रमाण आदि जानना चाहे वे डा० ट्राल कृत " water cure for the
millions " नामक ग्रन्थ देख सकते हैं,—लेखक ।

पौष्टिक औषधें ।

जिस समय लोग अपने आपको रोगी नहीं समझते उस समय भी वे अपनी दुर्बलता दूर करने और बल बढ़ानेके लिए तरह तरहकी पौष्टिक ओषधियाँ खाते हैं । युरोप अमेरिका आदिमें पौष्टिक औषधोका मुख्य और सार-भाग स्पिरिट या एलकोहल होता है और इस देशमे अफीम आदि । तात्पर्य यह कि सभी स्थानोंमे किसी न किसी प्रकारका मादक विष ही शक्ति-वृद्धिके लिए अनेक रूपोंमे खाया जाता है । अन्य औपधोकी अपेक्षा पौष्टिक ओषधियाँ मनुष्यके शरीरको और भी अधिक हानि पहुँचाती हैं । साधारणत लोगोंकी यह धारणा है कि ऐसे मादक द्रव्योंका शरीर पर प्रभाव पड़ता है पर वास्तवमें होता यह है कि, शरीरको बलपूर्वक उन विषोंका विरोध करना पड़ता है । इसमे सन्देह नहीं कि आपको बहुतसे ऐसे दुबले पतले आदमी मिलेगे जो यह कहते हों कि अमुक पौष्टिक औषधने बहुत गुण दिखाया और मैं उसके सेवनसे बराबर अच्छा हो रहा हूँ । पर सच पूछिए तो उनके शरीर पर उन औषधियोंका प्रभाव बिल्कुल उल्टा पड़ता है। पौष्टिक औषधके सेवनके समय और उससे कुछ समय बाद तक तो मनुष्य अपने आपको अवश्य अच्छा समझता और कई कारणोसे वह कुछ अच्छा भी हो जाता है, पर उनका अन्तिम परिणाम बहुत ही नाशक होता है । परीक्षासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मादक द्रव्योंसे न तो मस्तिष्क पुष्ट होता है और न रग पट्ठे आदि । जब पौष्टिक पदार्थोंका सेवन आरम्भ किया जाता है तब कुछ समयके लिए उसमेंके मादक द्रव्य दुर्बल अगोको फुरतीला बना देते हैं और चित्तको थोड़ा बहुत प्रफुल्लित कर देते हैं, पर शरीरके अगोंका वास्तविक पोषण उनसे हो ही नहीं सकता । इसके अतिरिक्त मादक द्रव्योमे एक और गुण होता है जिसका परिणाम कुछ दिनों बाद मालूम होता है । वह हमारे शरीरके बहुतसे आवश्यक द्रव्योका बुरी तरह नाश करते हैं और फलत शरीरके लिए बहुत ही घातक होते हैं । इस प्रकार पौष्टिक औषधोका प्रभाव हमारे शरीर पर दो प्रकारसे पड़ता है । एक बार तो वे कुछ समयके लिए अपने उत्तम गुण दिखलाती हैं और तदुपरान्त सदा शरीरमें घुन या विषकी तरह बनी रहती हैं । एक बड़े डाक्टरने ऐसी औषधोंकी उपमा जलती हुई आगसे दी है । आग जिस समय जलती है

उस समय उसका दृश्य तो वहुत भला मालूम होता है, पर उसके जल-बुझनेक वाद राख ही राख वच रहती है।

वहुतसे लोगोंका यह विश्वास है और अनेक डाक्टर और वैद्य आदि भी यही कहा करते हैं कि पौष्टिक औपधें पाचन-शक्तिको वढाती हैं, पर यह विश्वास भी वहुत ही भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। पाचन-शक्तिका जितना अधिक नाश मादक द्रव्योंसे होता है, उतना और दूसरे द्रव्योंसे हो ही नहीं सकता। शराव पीने या अफीम आदि खानेवाले लोगोंकी पाचन-शक्ति सदा वहुत मन्द रहती है। वहुधा शरावी रातको शराव पीनेके वाद दूसरे दिन या तो भोजन नहीं करते और या वहुत थोडा भोजन करते हैं। अफीमची तो सदा ही वहुत कम खाया करते हैं। भारतमें वहुधा अपढ ब्राह्मण निमंत्रण आदिके समय खूव भाँग पीते हैं। यह ठीक है कि कुछ लोगोंको भाँग पीने पर वहुत भूख लगती है और व सेरो अन्न खा जाते हैं, पर वही भाँग पीनेवाले सदा इस वातकी शिकायत करते हुए भी देखे जाते हैं कि भाँग खिला तो वहुत कुछ देती है, पर पचा कुछ भी नहीं सकती। पचावे कहाँसे? मादक द्रव्योंसे तो पाचन-क्रियामें वाधा मात्र होती है। एक डाक्टरने तो ऐल्कोहल्की केवल इसी लिए निन्दा की है कि उससे भूख तो वढ जाती है पर खाया हुआ पदार्थ नहीं पचता।

मादक द्रव्योका एक यह भी गुण वतलाया जाता है कि उनसे शरीरमे गरमाहट रहती है, पर यह कथन भी नितान्त निरर्थक है। डाक्टर रिचर्डसने मद्यपान पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें एक स्थान पर आपने लिखा है—"किसी पशुको कोई मादक द्रव्य खिलाकर उसके शरीरकी परीक्षा कीजिए तो आपको मालूम हो जायगा कि मादक द्रव्यने उस पशुके सारे शरीरकी उष्णता कम कर दी है। उसके शरीरके ऊपरी भागमें अवश्य थोडी वहुत गरमी जान पडेगी, पर वास्तवमें इस गरमीका मुख्य कारण यह है कि उस समय सारा शरीर ठढा होता जाता है। हृदयसे कुछ गरम खून चलता है और शरीरकी ऊपरी तहके पास पहुँच कर उसे अपनी उष्णता त्यागने और शरीरको ठढा करनेके लिए विवश करता है। फल यह होता है कि शारीरिक शक्तियाँ मन्द पड जाती हैं। अग ढीले हो जाते हैं, जो हृदय आरम्भमें जल्दी जल्दी चलता था वह जकड जाता है। जो मस्तिष्क पहले उत्तेजित हो उठा था वह अव वेकाम हो जाता है और मन दुर्वल हो जाता है।"

तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योंसे हमारे शरीरका किसी प्रकार पोषण नहीं हो सकता और न वैज्ञानिक दृष्टिसे मनुष्य अपने शरीरके लिए उसका उपयोग कर सकता है। एक डाक्टरका मत है— " मादक द्रव्य हमारे शरीरमे प्रवेश करके वहुत उपद्रव करते है और अन्तमें अपना वहुत कुछ दुष्परिणाम वाकी छोड़ कर स्वय ज्योंके त्यो हमारे शरीरसे वाहर निकल जाते हैं। वे द्रव्य कभी पच नहीं सकेत और न शरीरमें पहुँचने पर उनमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन होता है। " *

मादक द्रव्योंसे जिन्हें हम पौष्टिक समझ कर खाते हैं हमारे शरीरका वास्तवमे वहुत कुछ अपकार होता है। हम उन्हें जितना पौष्टिक समझते हैं, वे वास्तवमें उतने ही घातक होते हैं। मादक द्रव्य हमारे शरीरके भीतर पहुंच कर उसकी शक्तिका नाश आरम्भ करते हैं। यदि थोड़ी मात्रामे कोई मादक द्रव्य हमारे शरीरमें पहुँच जाय तो उसका आक्रमण रोकनेके लिए हमारे शरीरको कम परिश्रम करना पड़ता है,—थोड़ी शक्ति लगानी पड़ती है, और यदि उसकी मात्रा अधिक हो तो हमारे शरीरको भी उतना ही अधिक वल लगाना पडता है। उस घातक द्रव्यसे अपना पिंड छुड़ानेके लिए हमारे शरीरको जितना अधिक वल लगाना पड़ता है उसीको हम भ्रमसे वल-वृद्धि समझ लेते हैं। मादक द्रव्योंमेसे कोई नई शक्ति निकल कर हमारी शक्तिमे मिल नहीं जाती, उससे तो हमारी पुरानी शक्ति भी क्षीण होने लगती है। क्योंकि उसे शरीरसे वाहर निकालनेमें हमें अपनी वहुतसी शक्तिका वृथा उपयोग करना पड़ता है।

वहुतसे डाक्टर आदि मादक द्रव्योंके इन दोषोंको जानते हुए भी कहते हैं कि वहुत दुर्वल लोगोंके लिए पौष्टिक औषधें लाभदायक होती है, उनसे दुर्वलोंका वल वढता है। पर वे लोग यह विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझते कि जो पदार्थ सवल और नीरोग पुरुषोंको इतनी हानियाँ पहुंचाते हैं, वे ही दुर्वलोंका क्या उपकार कर सकेंगे। मादक द्रव्य तो विष हैं, उनका प्रभाव और कार्य सदा घातक ही होगा। सवलों और नीरोगोंकी अपेक्षा दुर्वलों और रोगियों पर तो उनका प्रभाव और भी वुरा होगा।

---

* जो लोग इस सम्बन्धमें और अधिक वातें जानना चाहते हों उन्हें डा० ट्रालकी लिखी हुई " The true temperance Plat-form " और " The Alcoholic controversy " नामक पुस्तकें देखनी चाहिए।

औषधों पर कुछ सम्मतियाँ ।

ऊपर जो लिखा गया है उसे पढकर प्रत्येक समझदार आदमी अच्छी तरह समझ लेगा कि औषधोंसे मनुष्यके शरीरमें केवल नये रोग ही पैदा होते हैं । उक्त बातें केवल मन-गढन्त ही नहीं हैं बल्कि बडे बड़े डाक्टरोंके अनुभवका सार हैं । इस स्थान पर औषधोके सम्बन्धमें कुछ बडे बडे डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सक्षेपमें दे देना अनुचित न होगा । नीचे जिन डाक्टरोंकी सम्मतियाँ दी गई हैं वे डाक्टर बड़े बडे डाक्टरी कालेजोके अध्यापक हैं और बहुत दिनोंसे औषधों द्वारा ही चिकित्सा करते हैं । अत औषधोंके दोष सिद्ध करनेके लिए उनके कथनसे बढकर और कोई प्रमाण नहीं हो सकता ।

डा० स्टेफेन्स कहते हैं कि नया डाक्टर समझता है कि मेरे पास प्रत्येक रोगके लिए बीस औषधे हैं, पर तीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके बाद उसकी समझमें आता है कि प्रत्येक औषधसे बीस रोग उत्पन्न होते हैं । इस उन्नत कालमें भी रोगियोंकी यातना पहलेकी तरह ही ज्योकी त्यो है । इसका कारण यही है कि डाक्टर लोग प्रकृतिका मनन न करके अपने पूर्वजोंके लेखोंका ही अध्ययन करते हैं । प्रो० पेनका मत है कि शरीरमें औषधे भी वही काम करती हैं जो काम स्वयं रोगोंके कारण करते हैं । अधिक औषध भी रोग ही उत्पन्न करती है । एक स्थल पर आपने यह भी कहा है कि एक नया रोग पैदा करके हम पहलेवाले रोगको अच्छा करते हैं ।

प्रो० क्लार्क कहते हैं,—चिकित्सकोंने रोगियोंको लाभ पहुँचानेकी धुनमे उल्टे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है । उन्होने हजारो ऐसे रोगियोंके प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृति पर छोड दिये जाते तो अवश्य नीरोग हो जाते । जिन्हें हम औषध समझते हैं वे वास्तवमें विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रासे रोगीका बल घटता है । प्रो० काक्सका मत है कि रोगीको जितनी ही कम औषधें दी जाँय उसका उतना ही अधिक उपकार होता है । प्रो० स्मिथने कहा है—औषधोंसे कभी रोगी अच्छे नहीं होते, उन्हें स्वय प्रकृति अच्छा करती है । डा० रशने लिखा है—चिकित्सकोंने रोगोंकी सख्या और साथ ही उनकी भयकरता भी बढ़ाई है । डाक्टर सेडलर

कहते हैं कि एलकोहल और दूसरी बहुतसी औषधियाँ केवल रोग ही उत्पन्न करती हैं। औषधोंसे शारीरिक-शक्तिका नाश होता है।

प्रो० पारकरने कहा है—मैंने कई रोगोंमे ओषधियोका प्रयोग नहीं किया जिसका फल बहुत ही अच्छा हुआ। अब मुझे निश्चय हो गया है कि ओषधियोंकी अपेक्षा प्रकृतिसे मनुष्यके नीरोग होनेमें बहुत सहायता मिलती है।

भारतमे बहुत दिनोंसे माता या चेचकका कभी कोई इलाज नहीं किया जाता। पर पाश्चात्य डाक्टरोंने यह तत्त्व बहुत हालमे समझा है। तो भी जब चेचकका बहुत अधिक प्रकोप होता है तब बहुधा डाक्टर कुछ चिकित्सा आरम्भ कर देते हैं। अमेरिकाके एक प्रान्तके हेल्थ आफिसर डा० स्नोने अपने देशके डाक्टरोको एक समाचार-पत्र द्वारा यह सूचना दी थी कि मैंने बिना किसी प्रकारकी ओषधिके उपयोगके ही माताके बडे बडे रोगियोंको बिलकुल चंगा कर दिया है। डा० एम्सने बहुतसे रोगियोंके मरनेपर उनकी लाशोको चीरकर देखा तो उन्हें शरीरके भीतरी भागोंमे अनेक ऐसे रोग मिले जिन्हें ओषधिजन्यके अतिरिक्त और कुछ कह ही नहीं सकते थे। इस कारण उन्होंने ओषधियोका व्यवहार छोड दिया। जबसे वह प्राकृतिक चिकित्सा करने लगे तबसे उनका एक भी रोगी न मरा और परीक्षाके लिए उन्हें शव मिलना कठिन हो गया।

डा० ओलेरीका मत है कि रोगोका नाश करनेमें सबसे अधिक सहायता उन्हीं लोगोसे मिली है जिन्होंने किसी डाक्टरी कालेजकी कोई परीक्षा नहीं दी है और न कोई डिप्लोमा पाया है। अनेक प्रकारकी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सायें ऐसे ही लोगोंकी निकाली हुई हैं, जो चिकित्सा-शास्त्रसे एकदम अनभिज्ञ थे। प्रो. एमसनका मत है कि चिकित्सा-सम्बन्धी बहुतसी कामकी बातें हम लोगोको साधारण आदमियोसे ही मिलती हैं, हम लोग तो खाली ग्रीक और लैटिन नाम रखना जानते हैं। डा० होम्स कहते हैं—ओषधियाँ आदि तैयार करनेके लिए द्रव्य निकालकर व्यर्थ खाने खाली की जाती हैं, वनस्पतियोका सत्तानाश किया जाता है और सॉपोंके जहर निकाले जाते हैं। अगर सब ओषधियाँ समुद्रमें फेंक दी जातीं तो मनुष्यजातिका बडा उपकार होता। हाँ, मछलियोको उससे अवश्य बहुत हानि पहुँचेगी। डा पैट्रिक लिखते हैं—अनुभवकी कसौटी पर ओषधियाँ पूरी नहीं उतरती हैं। दिन पर दिन उनकी निरर्थकता ही सिद्ध होती जाती है।

जीवनके किसी प्राकृतिक विकारके विरुद्ध किसी ओषधिका प्रयोग करना दिल्लगी नहीं तो और क्या है? ज्यों ज्यों डाक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं, त्यों त्यो वे समझते जाते हैं कि ओषधियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

ऊपर जितने डाक्टरोंके नाम दिए गए हैं, वे सब अमेरिकाके हैं। अब अँगरेजी साम्राज्यके कुछ डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सुनिए। डा० इवान्स कहते हैं कि इस उन्नति कालमें भी ओषधियोंके गुण निश्चित और सन्तोषप्रद नहीं हैं। डा० अबरनकी कहते हैं कि चिकित्सकोंकी संख्या बढ़नेके साथ रोगोंकी संख्या भी उसी मानमें बढती जाती है। सर मिचलका मत है कि रोगोंके मूल कारण तक ओषधियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं। डा० राबिन्सनका कथन है कि आज कलके व्यवहारमें ओषधिका गुण विज्ञान, प्रारब्ध और भ्रमके विलक्षण मिश्रण पर अवलम्बित है। डा० कूपरका सिद्धान्त है कि ओषधियोंपर जिनका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिए। लंदनके रायल कालेजके फेलो डा० रैमूजे कहते हैं कि आजकलकी ओषधि-चिकित्सा बडे बडे प्रोफेसरोंके लिए बहुत ही लज्जास्पद होनी चाहिए। विचार करके देखिये कि हमारी ओष-धियोंसे कितना कम लाभ होता है और रोगीकी दशा कितनी अधिक बुरी हो जाती है। मै निर्भय होकर कह सकता हू विना चिकित्साके रोगीकी दशा अपेक्षा-कृत बहुत अच्छी रहती है। प्रोफेसर जेम्सन कहते हैं कि विज्ञानके नामपर आजकलके चिकित्सा करनेवाले प्रकृति और रोगीकी वास्तविक चिकित्सा-प्रणा-लीसे एकदम अनभिज्ञ होते हैं। इसमें नौ ओषधियाँ रोगियोंके लिए बहुतही हानिकारक होती हैं। डब्लिन मेडिकल जरनलमें एकबार प्रकाशित हुआ था कि आजकल जिसे चिकित्सा-विज्ञान कहते हैं, वह नामको भी विज्ञान नहीं है। वह तो अटकलपच्चू सिद्धान्तों, भ्रमपूर्ण कल्पनाओं और अस्थिर सम्मतियोंका खजाना है। सर फोर्ब्सका मत है कि रोग या चिकित्साके सम्बन्धमे अभीतक कोई सिद्धान्त ठीक नहीं निकला। कुछ रोगी ओषधियोंकी सहायतासे अच्छे होते हैं, बहुतसे रोगी ओषधियाँ खाकर भी केवल आपसे आप ही अच्छे हो जाते हैं, और बहुत अधिक रोगी विना किसी प्रकारकी ओषधिके ही अच्छे हो जाते हैं। डा० फ्रॉंकको डाक्टरोंके हाथसे इतने अधिक रोगियोंको मरते हुए देखकर अंतमें कहना पडा था कि सरकार या तो इन डाक्टरोंको न रहने दे और उनकी नष्ट

चिकित्साप्रणाली रोक दे और या लोगोंके जीवनकी रक्षाका कोई नया उपाय निकाले। डा० वोस्टाक, जिन्होंने "औषधियोंका इतिहास" नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है, कहते हैं—हम ओषधियोंका जितना अधिक प्रयोग करते हैं, हमारा ज्ञान या अनुभव उतना अधिक नहीं बढ़ता। ओषधिकी प्रत्येक मात्रा रोगीकी सजीवनी शक्ति पर एक अन्ध प्रयोग और अनुभव मात्र है। डा० सर जानगुड, जिन्होंने प्रकृति और ओषधि आदिके सम्बन्धमें कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, कहते हैं—हमारी औषधियोंका प्रभाव अत्यन्त अनिश्चित है। युद्ध, महामारी और अकाल आदिके कारण अब तक सब मिलाकर जितने मनुष्य मरे हैं, उनसे कहीं अधिक ओषधियोंके प्रयोगसे मरे हैं। प्रो० वाटरहाउस कहते हैं कि शिक्षित चिकित्सकोंकी अपेक्षा उन अशिक्षित चिकित्सकोंपर मेरा कहीं अधिक विश्वास है जिनकी चिकित्सा केवल अनुभवपर निर्भर होती है। सभी देशों और समयोंमें उन लोगोंने समस्त विश्वविद्यालयोंसे कहीं अधिक बढ़कर काम किया है। डाक्टर जानसन जो चिकित्सा-सम्बन्धी एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादक हैं, कहते हैं—अपने बहुत दिनोंके अनुभवसे मैं यह बात कह सकता हूँ कि यदि संसारमें कोई चिकित्सक, जर्राह, अत्तार या दवा बेचनेवाला न होता तो आजकलकी अपेक्षा रोग बहुत ही कम हो जाते और मृत्यु-संख्या भी बहुत घट जाती। * पेरिसके डाक्टर लेगोल कहते हैं—इस समय हम लोग बड़ी ही भूल कर रहे हैं और यदि हम सफलता प्राप्त करना चाहते हों तो हमें अपना मार्ग बदल देना चाहिए।

एडिनबरामें प्रोफेसर जान कर्क नामक एक चिकित्सक हैं, जिन्होंने चालीस वर्षोंतक चिकित्सा करनेके उपरान्त ओषधियोंकी निरर्थकता समझी और तब बिना ओषधियोंके चिकित्सा आरंभ की। आपका मत है कि, डाक्टरी कालेजोंमें

---

* एक बार एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक उत्तरीय ध्रुवके आसपासके प्रदेशोंसे लौट कर आया था। उसके एक मित्रने उससे कहा—"बड़े आश्चर्यकी बात है कि आप कहते हैं कि उन प्रदेशोंमें एक भी चिकित्सक नहीं है और वहाँ बहुतसे लोग सौ वर्षकी आयुतक पहुँच जाते हैं।" वैज्ञानिकने उत्तर दिया—"यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इन देशोंमें इतने चिकित्सकोंके रहते हुए भी कुछ लोग ही सौ वर्षकी आयुतक पहुँच पाते हैं।"

विद्यार्थियोंकी बुद्धि नष्ट कर दी जाती है और उन्हें प्राकृतिक प्रणालियोंका अध्य-यन करनेके लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें फिरसे उसके योग्य बननेमें कठिन परिश्रमपूर्वक अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है। सर कूप-रका मत है कि ओषधि-विज्ञानकी उत्पत्ति मिथ्या कल्पना और दिन पर दिन बढ़ती हुई हत्यासे हुई है। प्रो० मार्टरका मत है कि समस्त विज्ञानोंमें ओषधि-विज्ञान सबसे अधिक अनिश्चित है। एडिनबराके मेडिकल कालेजके प्रो० ग्रेगरीने कहा है कि चिकित्साशास्त्रमें जिन बातोंको सत्य माना जाता है उनमेंसे ९९ प्रति सैकड़े मिथ्या हैं और उसके सिद्धान्त बिल्कुल ही भोंड़े और भद्दे हैं। प्रो० कार्सन कहते हैं-हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी ओषधियोंसे अच्छे होते हैं या प्रकृतिसे। सम्भवतः उन्हें रोटीरूपी गोलियाँ ही अच्छा करती हैं। सर रिचर्डस-नने कहा है कि ओषधियोंके व्यवहारसे सभ्यलोगोंकी आयु बहुत ही कम हो गई है। डा० टाइट्सका मत है कि संसारमें तीन चौथाई आदमी दवाओंके नुसखोंसे मरते हैं। फ्रान्सके प्रसिद्ध शरीर-शास्त्रवेत्ता मैगेंडिक कहते हैं कि-ओषधियोंके विषयमें संसारमें किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं है। रोगको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता प्रकृतिसे ही मिलती है, डाक्टरोंसे बहुत ही थोड़ी सहायता मिलती है और वह भी उस दशामें जब वे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचावें। डाक्टर ओस-लर जो कई विश्वविद्यालयोंमें चिकित्सा-शास्त्रके अध्यापक रह चुके हैं और जो ओषधि-शास्त्रके सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं, बिना ओषधिकी चिकित्साकी प्रशंसा या निन्दा करते हुए एनसाइक्लोपीडिया एमेरिकनामें लिखते हैं कि ओष-धियोंकी निरर्थकताका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दीके आरंभमें टायफाइड ज्वरकी चिकित्सामें बड़ी बड़ी भयंकर और उग्र ओषधियोंका प्रयोग होता था। रोगीकी फसद खोली जाती थी, उसके शरीर पर छाले डाले जाते थे और तरह तरहके भीषण उपाय किए जाते थे? पर आजकलके रोगि-योंको विशेष प्रकारसे स्नान कराया जाता है और उन्हें कदाचित् ही कोई ओषधि दी जाती है। इससे यही सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि ओषधियोंका उन रोगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है। अन्तमें आपने कहा है कि वही सबसे अच्छा चिकित्सक है, जो ओष-धियोंको निरर्थक समझता है।

प्राकृतिक चिकित्सा।

इन पृष्ठोंके पढ़नेके उपरान्त पाठकोंके मनमें स्वभावतः यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर रोगोंके शमनका सर्वोत्तम और निर्दोष उपाय कौनसा है? आजकल अनेक प्रकारकी चिकित्सा-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनमें औषधियोंका प्रयोग बिलकुल नहीं होता, केवल ऊपरी उपचारोंसे रोगोंको शान्त किया जाता है। ये सभी प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्साके नामसे अभिहित हैं। और जल-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा, विद्युत्-चिकित्सा आदि अनेक प्रकारकी चिकित्साएँ हैं। इनके अतिरिक्त मेस्मरिज्मके अनेक अंगों और प्रकारोंसे भी रोगियोंकी चिकित्सा की जाती है। यद्यपि ये सभी चिकित्साएँ प्राकृतिक कहलाती हैं, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर यह पता लग जाता है कि उनमेंसे अधिकांशमें अनेक प्रकारकी ऐसी क्रियाओंकी आवश्यकता होती है जिन्हें कोई समझदार प्राकृतिक नहीं कह सकता। कुछ प्रणालियाँ अवश्य ऐसी हैं जो ठीक ठीक अर्थमें प्राकृतिक कही जा सकती हैं और उपवास-चिकित्सा उनमेंसे सर्वश्रेष्ठ है। उपवास चिकित्सामें न तो किसी प्रकारके ऊपरी उपचारकी आवश्यकता होती है और न किसी प्रकारके यंत्र-प्रयोगकी। इसमें आवश्यकता केवल इस बातकी होती है कि मनुष्य उस समय तकके लिए अपना भोजन छोड़ दे, जब तक कि उसे वास्तविक और स्वाभाविक भूख न लगे। इसके अतिरिक्त उपवास-कालमें मनुष्यकी शक्ति बनाए रखनेके लिए उसमें कुछ व्यायामका भी विधान है।

अब इस प्रणालीसे औषधि-चिकित्साका मुकाबला कीजिए। दो ऐसे मनुष्योंको लीजिये जिनकी पाचन-शक्ति नष्ट हो गई हो। उनमेंसे एक मनुष्य तरह तरहकी गोलियाँ खाकर, अवलेह चाटकर और दवाओंकी बड़ी बड़ी बोतलें खाली करके अपनी भूख बढ़ाता है, और दूसरा मनुष्य केवल दोचार दिनोंतक उपवास करके और सवेरे-सन्ध्या दोचार मीलका चक्कर लगाके अपनी भूख ठीक कर लेता है। अब आप ही सोचिए कि दोनोंमेंसे फायदेमें कौन रहा? दवाएँ खाकर अपने शरीरको भाड़ेका टट्टू बना लेनेवाला अथवा उपवास और व्यायाम करनेवाला? बड़े बड़े डाक्टरोंने परीक्षा और अनुभव करके यह सिद्धान्त निकाला है कि किसी रोगकी औषधद्वारा चिकित्सा आरंभ करते ही रोगीको कई तरहकी

छोटी मोटी शिकायतें पैदा हो जाती हैं। किसीको कब्जियत आ घेरती है तो किसीके सिरमें दर्द होने लगता है। किसीकी नींद कम हो जाती है तो कोई दुर्बल और अशक्त हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति तो हमें सूचना देती है कि हम उसके स्वभावके विरुद्ध काम करते हैं-उसके साथ निष्ठुरताका व्यवहार करते हैं, पर हम उसकी सूचनाओं पर ध्यान ही नहीं देते, जबरदस्ती उसका गला घोंटते चलते हैं, अन्तमें प्रकृति भी लाचार होकर अस्वाभाविक स्थितिमें पहुँच जाती है, और उस दशामें शरीर ऐसा निकम्मा हो जाता है कि बिना औषधिकी सहायताके चल ही नहीं सकता। जब कुछ समयमें शरीर साधारण औषधियोंका अभ्यस्त हो जाता है तब उसे अधिक तीव्र औषधियोंकी आवश्यकता होती है। यह क्रम बराबर बढता चला चलता है और अन्तमे मनुष्यके प्राण लेकर ही छोडता है। पर जो मनुष्य उपवास करता, अथवा हल्की और जल्दी पचनेवाली चीजे खाता, स्वच्छ वायुमें रहता और खूब कसरत करता है, वह स्वय आरोग्यताकी किस स्थिति तक पहुँच सकता है इसका अनुभव प्रत्येक विचारवान् मनुष्यको स्वय करना चाहिए। व्यायामसे शरीरमें नए बलकी उत्पत्ति होती है, रग-पट्ठे मजबूत होते हैं, फेफड़े, जिगर, गुरदे आदिके काम अधिक उत्तमतापूर्वक होने लगते हैं और सारे शरीरमे एक नई सजीवनी शक्ति आ जाती है। रोगीकी पाचन शक्ति ठीक हो जाती है और उसे खूब खुलकर भूख लगती है। औषधियाँ किसी एक रोगको दूर करके भी अपने बहुतसे बुरे प्रभाव और अंश छोड जाती हैं, पर प्राकृतिक-चिकित्साकी औषधियाँ-व्यायाम, शुद्ध-वायु, हल्का और सुपाच्य भोजन आदि-रोगको अच्छा करनेके अतिरिक्त शरीरके और दूसरे बहुतसे विकारोंको भी नष्ट कर देती हैं। इस प्रणालीमे रोगको बल-पूर्वक जहाँका तहाँ दबाया नहीं जाता बल्कि उसका कारण दूर किया जाता है।

सुप्रसिद्ध डाक्टर ई एच डेवीने एक बार कहा था-" किसी रोगी मनुष्यके पेटमें भोजन न रहने दो, इससे वह रोगी नहीं बल्कि रोग भूखों मर जायगा। " और यह बात वास्तवमें है भी बहुत ठीक। उपवास-चिकित्साके सिद्धान्त इतने सरल, उपयोगी और लाभदायक हैं कि शरीर-शास्त्र-वेत्ता मात्र उससे सहमत हैं, सभी देशों और प्रकारोंके चिकित्सक किसी न किसी अवसर पर और किसी न किसी रूपमें उनके अनुसार काम करते हैं। ससारके सभी

चिकित्सा-ग्रन्थोंसे उनका समर्थन होता है और यहाँ तक कि पशु पक्षी आदि भी अपने आचरणोसे उन सिद्धान्तोकी पुष्टि करते हुए देखे जाते हैं । उपवासके सिद्धान्तोंकी उपयोगिता समझानेके लिए इससे बढ कर और क्या चाहिए ?

शरीरकी क्रिया पर उपवासका जो परिणाम होता है उसके सम्बन्धमे बहुत कुछ इस पुस्तकके आरंभमे ही कहा जा चुका है । वैसे आश्चर्यकी बात है कि लोग बीच बीचमें अपने कामसे स्वयं तो अवश्य छुट्टी ले लेते हैं, पर अपने शरीरको कभी छुट्टी नहीं देते । हाथ पैर या मस्तिष्कसे होनेवाले कामोंको छोड़ देना ही वास्तवमें शरीरको छुट्टी देना नहीं है, क्योकि उस समय शरीरकी भीतरी मशीनको आराम करनेका अवसर नहीं मिलता । हम अपने दिमागके साथ भले ही कभी कभी थोड़ी बहुत रिआयत कर दिया करते हों, पर अपने पेटके साथ हम कभी रिआयत नहीं करते और पेटसे सदा काम लेते रहना ही सब प्रकारके रोगोंकी जड़ है ।

धर्म्मग्रन्थ और उपवास ।

संसारमे प्राय जितने मुख्य मत, धर्म्म या सम्प्रदाय हैं उन सबमे किसी न किसी प्रकारके उपवास या व्रतकी आज्ञा दी गई है । पहले भारतीय धर्म्मोंको ही लीजिए । हिन्दुओके धर्म्म-शास्त्रोंमें भिन्न भिन्न पुण्य-तिथियो और पर्व्वोंको छोड़ कर प्रत्येक एकादशी, प्रदोप और रविवार आदिके लिए व्रतका विधान है । हिन्दुओके समस्त व्रतोंकी सख्या ५५० से ऊपर है। अधिकाश व्रतोंमें अन्न मात्रका स्पर्श न करने और बहुधा एक बार थोड़ासा फलाहार करनेकी आज्ञा है । इन सब व्रतोके मूलमें केवल एक ही सिद्धान्त है और वह सिद्धान्त पाचन क्रियाको ठीक अवस्थामें रखना अथवा लाना है । आजकल लोग व्रत तो करते हैं पर इस सिद्धान्तका गला इतनी बुरी तरहसे घोंटते हैं कि उनके व्रतका फल व्रत न रखनेसे भी अधिक हानिकारक होता है । जिस व्रतमे केवल एक बार और वह भी बहुत थोड़े मानमे फल आदि ही खानेका विधान है, उस व्रतमे लोग सिंघाडे और कूटके आटेकी पूरियॉ, तरह तरहकी पकौड़ियॉ, दस पॉच तरहकी तरकारियॉ, दो तीन तरहके हलुए और कई तरहकी मिठाइयॉ

खा जाते है और ऊपरसे जहाँतक अधिक हो सकता है, दूध रवडी और मलाईका भी सत्तानाश करते है। रोजके भोजनसे दुगुना और तिगुना भोजन केवल इसी लिए होता है कि उस दिन वे लोग व्रत रहते हैं—उपवास करते है । इसमें दोष लोगोंका ही है, धर्म्मग्रन्थोमें उनकी आज्ञा केवल हित और कल्याणकी दृष्टिसे दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे धर्म्मग्रन्थोमे निर्जल और चान्द्रायण आदि अनेक प्रकारके दूसरे व्रत भी है जिनमें किसी प्रकारके नियमोल्लंघनकी भी सम्भावना नहीं होती । भारतमे पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक व्रत करती हैं और यही कारण है कि यहाँकी स्त्रियाँ साधारणत उन रोगोंसे मुक्त रहती हैं जिनके कारण मर्द परेशान रहते है । कब्जियत और अनपच आदि रोग स्त्रियोको बहुत कम होते है। जैनियोंके धर्म्मग्रन्थोंमे केवल अनेक प्रकारके उपवासोंका ही विधान नहीं है बल्कि बहु-काल-व्यापी उपवासोका भी विधान है। उनके उपवास सप्ताहो बल्कि महीनो तक चलते है और बहुतसे अशोंमे उन उपवासोंसे मिलते जुलते होते हैं जो आजकलके पाश्चिमात्य उपवास-चिकित्सक अपने रोगियोंको कराते हैं। मुसलमानोंको रमजानके महीनेमें तीस दिनों तक अपने धर्म्मग्रन्थके आज्ञानुसार बराबर रोजे रखने पडते है । रोजेके दिन वे बहुत सवेरे ब्राह्म-मुहूर्त्तमें भोजन कर लेते है और तब दिन भर कुछ नहीं खाते, रोजा सूर्य्यास्तके बाद ही खुलता है । ईसाइयोके धर्म्मग्रन्थोंमे भी उपवासकी स्पष्ट आज्ञा है। वे उपवासके दिन कुछ विशिष्ट पदार्थ ही खाते है और बहुधा कई कई दिनों तक उपवास रखते है। तात्पर्य यह कि सभी प्रधान और प्राचीन धर्मोंमें उपवासका विधान है और उनके ग्रन्थोंके अनुसार शरीर, मन और आत्मा तीनोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक है।

जो धर्म्म बहुत हालके चले हुए हैं, उनमें अवश्य ही उपवासकी आज्ञा नहीं है और इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है । बहुत प्राचीन कालमे, जब कि मनुष्य पर सभ्यताका रग नहीं चढा था, वह केवल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसे प्रकृतिके नियमोंका बहुत कुछ सहज और स्वाभाविक ज्ञान रहता था और वह कभी यथासाध्य प्रकृतिके नियमोका उल्लंघन न करता था । अनेक प्राचीन जातियोंके विषयमें अनुसन्धान करने पर पता चला है कि वे आठ पहरमें केवल एक बार और वह भी बहुत अल्प भोजन करती थीं । मनुष्य जातिमे

अधिक भोजन करनेका रोग बहुत बादमे फैला है । पर प्राचीन कालमे प्राय सभी देशोके लोग विशेषत धर्मिष्ठ लोग बहुत थोडा भोजन करते थे और प्राय लवे चौड़े उपवास किया करते थे । किसी देश और किसी धर्म्मके साधु, सन्त और महात्माको लीजिए, उनके सम्बन्धमे यह बात अवश्य प्रसिद्ध होगी कि उसने इतने दिनोंके और इतने उपवास किए थे । भारतके प्राचीन ऋषियोंकी तपस्याका उपवास एक प्रधान अग था । वडे वडे धर्म्माचार्य्य स्वय बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियो और भक्तोको उसके लाभ बतलाते थे और स्वयं उसके आदर्श बनते थे । पर आजकल जो लोग धार्मिक दृष्टिसे उपवास करते है, प्राय सभी देशोंमे उन्हें धर्म्मान्ध बतलाया जाता है और उनकी हँसी उडाई जाती है । इसका कारण यही है कि आजकल लोग प्राकृतिक नियमोसे एकदम अनभिज्ञ हो गए हैं । जो लोग अन्नको ही प्राण समझते हैं उन्हींकी आँखे खोलनेके लिए उपवासके सिद्धान्तोका फिरसे प्रचार होने लगा है।

इतिहास और उपवास।

किसी देश और कालके इतिहासमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो उपवास-सिद्धान्तके बडे समर्थक और पोषक हों । भारतीय इतिहास तो ऐसे लोगोंसे भरा ही पडा है, अन्य देशोंमे भी ऐसे लोगोंकी सख्या कम नहीं हैं। अरब देशमे एक बहुत बडा चिकित्सक हो गया है जो बिना किसी प्रकारके औषधि-प्रयोगके चिकित्सा करता था और रातरातभर रोगियोके बिस्तरोंके पास केवल इसी लिए पहरा दिया करता था कि जिसमे वे कुछ खा न लें । ईसाई पादरी और धर्म्माचार्य बहुधा नगरोसे बाहर निकलकर जगलोंकी ओर चले जाते थे । और किसी प्रकारका आहार न करते थे । व्रत-भग होनेके भयसे वे एक दाना भी मुँहमे न डालते थे और डेढ़ दो महीने बाद भी उनमे इतनी शक्ति रहती थी कि वे उन जगलोसे पैदल चलकर अपने अपने मठ तक पहुंच जाते थे । एक बार एक ईसाई महात्माकी एक मित्र स्त्री मरगई। वह महात्मा उसके वियोगसे इतना दुखी हुआ कि उसने अपने जीवनका अन्त कर देना निश्चय किया । और किसी प्रकारकी आत्म-हत्याको तो

उसने उचित न समझा, पर वह एक पहाड़की चोटीपर चला गया और वहाँ पहुँचकर उसने अन्न जल छोड़ दिया। उसे आशा थी कि इस प्रकार विना अन्न-जलके रहनेसे उसके प्राण अवश्य निकल जायँगे। पर उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई और वह विना अन्न जलके सत्तर दिनों तक जीता रहा। इतने दिनोंमें उसका दुःख भी कम हो गया और उसके मनमें ज्ञान भी उपजा। इकहत्तरवें दिनसे उसने एक एक तोला भोजन करना आरम्भ किया। इसके बाद उसका स्वास्थ्य पहलेकी अपेक्षा बहुत सुधर गया। वह चौदह वर्षोंतक जीवित रहा और उसने अनेक मठ आदि स्थापित किए। आजकल भी यह देखा गया है कि खानोंमें काम करनेवाले कुली केवल पानी पीकर ही आठ दस दिनों तक रहते हैं और विना अन्नके बराबर काम करते रहते हैं। बहुतने मनुष्योंने विना भोजनके गरमसे गरम देशोंमें आठ आठ और दस दस दिन विता दिए हैं।

पशु और उपवास।

उपवासकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए हमें सबसे अच्छे और निर्विवाद प्रमाण तरह तरहके पशुओं और पक्षियों और दूसरे जीवोंसे मिल सकते हैं। मनुष्यकी तरह इन जीवोंको सभ्यताने अपने पाशमें नहीं फँसाया है और ये बहुधा प्राकृतिक अवस्थामें ही रहते हैं। उन पशुओं और पक्षियों आदिकी बातें जाने दीजिए जिनके मालिक उन्हें जरासा बीमार समझकर ही किसी पशु-चिकित्सालयमें भेज देते हैं और उनको भी जबरदस्ती दवा पिलाकर अपनी तरह जन्म-रोगी बना लेते हैं। सभ्य मनुष्योंको छोड़कर बाकी प्रायः सभी जीव किसी भारी रोगसे पीड़ित होने पर सबसे पहले भोजनका ही परित्याग करते हैं। यदि किसी तरहसे कोई घाव लग जाता है तो वह किसी एकान्त स्थानमें जाकर विना जल और भोजनके कई कई सप्ताहों तक पड़ा रहता है। केंचुली बदलनेके समय साँप कई सप्ताहों तक विना आहारके ही पड़ा रहता है। इसका कारण यही है कि आहार न करनेके कारण उसकी वह क्रिया थोड़े कष्टसे और जल्दी हो जाती है बहुतसे पशु ऐसे होते हैं जिनका खून गरम होता है। ऐसे पशु

बहुधा जाड़ेमें एकान्तमे विना आहारके पड़े रहते हैं। जाड़े भर निराहार रहने पर भी उनकी शक्ति बहुत ही कम घटती है और जाडेके अन्तमें वे बड़े आनन्दसे विचरने लगते हैं। रेंगनेवाले जीवोंको यदि कुछ अधिक समय तक आहार न मिले तो उनकी शक्ति किसी प्रकार क्षीण नहीं होती। रीछोंकी शरीर-रचना मनुष्यके शरीरसे मिलती जुलती होती है। बरफीले देशोंमे जाड़ेके दिनोंमे, रीछ प्रायः चार महीने अपनी मॉदमे निराहार पडे सोते रहते हैं। इस बीचमें यदि कोई उन्हे छेडे तो वे बहुधा उसे मार डालनेका ही प्रयत्न करते हैं। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि रोगी होने पर सब प्रकारके जीव आहार छोड़ देते हैं, पर ऊपर जो उदाहरण दिए गये हैं उनसे यह भी सिद्ध होता है कि पशु अपना स्वास्थ्य बनाए रखनेके विचारसे भी समय समय पर उपवास किया करते हैं। डा० मैकफेडनका एक छोटासा कुत्ता सफरमें एकबार एक बहुत ऊँचे मकानकी छत परसे नीचेके पत्थरवाले फर्श पर गिर पड़ा। उसके गिरनेके समय जो शब्द हुआ था उस्से यह अनुमान हुआ था कि अब इसकी एक भी हड्डी साबित न बची होगी। गिरते ही उसके मुँह और नाकसे लहूकी धारा बहने लगी थी और वह बिलकुल अधमरा हो गया था। कुछ उपस्थित सैनिकोंने डाक्टर महाशयको सम्मति दी कि आप गोली मारकर इसे इस भयंकर यातनासे मुक्त कर दें। पर उन्होंने उन लोगोंकी वह बात स्वीकार न की और उस कुत्तेको एक टोरीमें रखकर घर ले जाकर उसी पर अपने उपवास-सिद्धान्तकी परीक्षा करना निश्चय किया। जॉच करने पर मालूम हुआ था कि उसकी दो टाँगे और तीन पसलियाँ टूट गई थीं और जिस कठिनतासे वह साँस लेता था उससे सिद्ध होता था कि उसके फेफडो पर भी अवश्य चोट पहुँची है। जब सब लोग उसके जीवनसे निराश हो गए तब उसका मृत-शरीर गाढ़नेके लिए गढा तक खोदा गया। पर दूसरे दिन सवेरे तक उसके प्राण न निकले और वह बहुतसा पानी पी गया। बीस दिनों तक वह उसी दशामें बिना किसी प्रकारके भोजनके पड़ा रहा। वह केवल पानी पीता था, यहाँ तक कि दूध या शोरबा भी नहीं छूता था। इक्कीस दिनोंके बाद उसने दूध पीना आरम्भ किया और छब्बीसवें दिनसे वह छिछड़े खाने लगा। उसके पैर अवश्य कुछ टेढे हो गए थे पर और किसी प्रकारका दोष उसके शरीरमें न रह गया था दूसरे वर्ष जब डाक्टर महाशय उसे

अपने साथ लेकर फिर उसी स्थान पर गए, जहाँ वह मकानकी छत परसे गिरा था और उन्होने वहाँके पशु-चिकित्सकको उसे दिखलाया तब चिकित्सकको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सबसे पहले तो उसकी समझमे यही बात नहीं आती थी, कि वह बिना किसी प्रकारके भोजन या ओषधिके जीता ही कैसे बचा। उसके सिद्धान्तके अनुसार तो उसे जीवित रखने और नीरोग करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता थी कि बहुतसा भोजन शराब और बीसियों तरहकी ओषधियाँ जबरदस्ती नलीकी सहायतासे उसके पेटमें उतारी जायँ, तब फिर भला उसका जीवित रहना और चगा हो जाना उसकी समझमे कैसे आ सकता था ! इसी लिए वह उस बातको अनहोनी समझता था। अन्तमें उसे यही कहना पडा कि इस कुत्तेकी जीवन-शक्ति ही कुछ अद्भुत है !

प्रत्येक मनुष्य थोड़ा अनुभव करके यह बात अच्छी तरह समझ सकता है कि जगली और पालतू सभी जानवर रोगी होनेपर दाना-पानी छोड देते है और बहुधा अपेक्षाकृत शीघ्र ही नीरोग हो जाते हैं। अन्न जल छोडनेकी शिक्षा उन्हें स्वय प्रकृतिसे ही मिलती है, और प्रकृति वही शिक्षा पशुओंके द्वारा हम समझदारोको भी देती है पर हम अपनी समझदारीके आगे उसकी कोई कला लगने ही नहीं देते। हम लोग भोजनकी सहायतासे रोगका पालन करते हैं और औषधियोंकी सहायतासे उसकी वृद्धि करते है, और तिसपर समझते यह है कि हम अपनी चिकित्सा कर रहे हैं ! पर चिकित्साके मूल सिद्धान्तोंसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। हम लोगोंका मार्ग ही उससे बिलकुल भिन्न और विपरीत है। या तो प्रकृति स्वयँ बेहया बनकर हमें नीरोग कर दे, या हम तरह तरहके उपायोंसे रोग उत्पन्न करनेवाले विषको एकत्र करके शरीरके किसी अगमें दबा दें और उसे समय पाकर फिरसे बढने और फैलनेका मौका दें। इसके सिवा हमारे चंगे होनेका और कोई उपाय ही नहीं है। न जाने मनुष्योंकी समझमें यह छोटीसी बात कब आवेगी कि रोगी जब आहार छोड देता है तब आहारको पचानेवाली शक्ति उसके रोगका शमन करनेमे लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र ही नीरोग हो जाता है।

चिकित्सा और उपवास।

आजकल जितनी चिकित्साएँ प्रचलित हैं और जिनमेंसे अधिकाशको हम अप्राकृतिक बतला आए हैं, उन सब चिकित्साओंमे भी किसी न किसी अवस्था और किसी न किसी रूपमें उपवास अवश्य कराया जाता है। रोगीका भोजन परिमित कर देना तो चिकित्सक मात्रका मूल-मत्र है पर बहुतसी अवस्थाओंमें वे उपवासकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता समझते हैं। ज्वर आदि बहुतसे रोगोंके आरम्भमें तो रोगीको सबसे पहले अवश्यमेव उपवास ही कराया जाता है और उठते हुए ज्वरको छेड़ना किसी प्रकार ठीक नही समझा जाता। यद्यपि बहुतसे ऐसे शौकीन रोगी भी निकलेगे जो रातको थोडी हरारत होते ही सवेरे दोचार खुराक दवाकी पी डालेगे तथापि कोई बुद्धिमान् उनके इस कृत्यकी प्रशसा न करेगा। अनेक रोगोंके आरंभमे तो हम अवश्य ही पर-विवश होकर प्रकृतिके कुछ नियमोका पालन करते हैं, क्योंकि यदि हम उनका पालन न करें तो प्रकृति हमें कठोर दंड देती है। पर आगे चल-कर जब हम उन नियमोके पालनमे कुछ लाभ उठा चुकते हैं तब उन्हींका अति-क्रमण करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि उस समय हम उस स्थितिमें पहुँच जाते हैं जिसमें प्रकृतिद्वारा हमें तुरन्त ही नहीं बल्कि कुछ कालके उपरान्त दण्ड मिलता है। अनेक रोगोंके आरम्भमें जब डाक्टर, वैद्य या हकीम अपने रोगीको उपवास कराता है तो उससे रोगका जोर बहुत कुछ घट जाता है। यदि रोगीको उसी स्थितिमे कुछ और समयतक रहने दिया जाय—उसे न तो किसी प्रकारकी दवा दी जाय और न किसी प्रकारका भोजन—तो अवश्य ही वह बहुत शीघ्र नीरोग हो सकता है। पर यहाँ आरम्भ तो होता है प्राकृतिक नियमोसेऔर बीचमें ही अप्राकृतिक नियमोंका व्यवहार आरम्भ हो जाता है।

जो हो, पर इसमे किसी तरहका सदेह नहीं कि सभी चिकित्सक किसी न किसी अवसरपर अपने रोगीका भोजन बन्द कर देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वे उपवासका महत्त्व जानते और मानते तो अवश्य हैं और उससे समय समयपर लाभ भी उठाते हैं, पर उनका उपवाससम्बन्धी ज्ञान अपेक्षाकृत बहुत ही कम है। हकीमो और वैद्योंकी अपेक्षा डाक्टरोका तत्सम्बन्धी ज्ञान और भी

अल्प है। कोई हकीम या वैद्य तो अपने रोगीको दस वीस दिनोंतक विना भोजनके रख सकता है, पर किसी डाक्टरके लिए ऐसा करना असम्भव है। प्राय हकीमों और वैद्योंके ऐसे कृत्योंपर डाक्टर लोग हँसते हुए देखे गए हैं। वे लोग समझते हैं कि यदि रोगीको किसी प्रकारका आहार न दिया जायगा, तो उसकी शक्ति नष्ट हो जायगी और वह नीरोग होनेके वदले मर जायगा। पर उनका यह मत सर्वांशमे सत्य नहीं उतरता। आगे चलकर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि उपवास और वल-क्षयका परस्पर कितना सम्वन्ध है। पर इस अवसरपर यह वात भूल न जानी चाहिए कि उपवास करनेवाले वैद्यों-और हकीमोंकी निंदा करने और हँसी उड़ानेवाले डाक्टर भी कुछ विशेष अवस्थाओं और रोगोमें अपने रोगियोंको आठ आठ और दस दस दिनतक विना भोजनके ही रखते हुए देखे गए हैं।

आयुर्वेद और उपवास।

इस अवसर पर थोडे शब्दोंमें यह वतला देना भी अनुचित न होगा कि हमारे प्राचीन भारतीय-चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेदमें उपवासको कितना महत्त्व दिया गया है और उसके क्या क्या लाभ वतलाए गए हैं। हमारे यहाँके आयुर्वेदज्ञोंका मत है, कि शरीरमें कफ, पित्त और वात ये तीन पदार्थ हैं। जव तक ये तीनों पदार्थ समान स्थितिमें रहते हैं तव तक मनुष्य नीरोग रहता हैं, पर जव इनमेसे कोई पदार्थ घट या वढ जाता है, तव उसकी गिन्ती दोपोंमें होती है, अर्थात् उसके कारण मनुष्यके शरीरमें कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग वहुत ही क्षुद्र भी हो सकता है और महाभयकर भी। यही कारण है कि यदि आप किसी रोगके सम्वन्धमे आयुर्वेदका कोई ग्रन्थ उठा कर देखे तो उसमें आपको उस रोगकी उत्पत्ति कफ, पित्त अथवा वातसे ही मिलेगी। वढ़े या घटे हुए पदार्थको समान स्थितिमे लाना और दोपका नाश करना ही वैद्य मात्रका कर्त्तव्य होता है। उपवास या लघनके विषयमें हमारे चिकित्सा-शास्त्रका मत है कि इसे सहन करनेकी शक्ति केवल दोपोंमे ही होती है। जव तक मनुष्यके शरीरमें दोप रहता है तभी तक वह निराहार रह सकता है, दोपोंके शमन हो

जाने पर वह विना भोजनके नहीं रह सकता। यह वात वैद्यकके कई ग्रन्थोंमें लिखी हुई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि लघन करनेसे दोप नष्ट होते हैं, जठराग्नि दीप्त होती है, शरीर हलका हो जाता है और भूख वढती है। जब कि दोपोंहीसे रोगोंकी सृष्टि होती है और लंघनसे दोपोंका नाश होता है तव इस सिद्धान्तके माननेमें कोई संकोच नहीं हो सकता कि लघनसे रोगोंका नाश होता है। सुश्रुतमें यह वात स्पष्ट रूपसे लिखी हुई है कि जिस मनुष्यकी अग्नि और दोष ठीक दशामे न हो, लंघनसे उसकी अग्नि ठीक दशामें आ जाती है और उसके दोपोंका परिपाक हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंकी सम्मतिके अनुसार पहले एक स्थान पर यह कहा जा चुका है कि रोगी जव आहार छोड देता है तव उसकी आहार पचानेवाली शक्ति उसके रोगका शमन करनेमे लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र नीरोग हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंके इस सिद्धान्तकी पुष्टि हमारे यहाँके प्राचीन शास्त्रोंके इन वचनसे भलीभाँति हो जाती है–"आहारं पचति शिखी दोपानाहारवर्जित.।" अर्थात् आहारको अग्नि पचाती है और जव पेटमे आहार नहीं रहता तव वह दोपोंको पचाती या नष्ट करती है। इससे यह वात प्रमाणित होती है कि खाली पेट रहनेसे दोपों या रोगोंका नाश ही होता है, निराहार रहनेसे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। भावप्रकाशमें लिखा है कि यदि दोप साधारण या मध्यम अवस्थामे हो तो लघन करना ही श्रेष्ठ है। उसके मतसे लघनके द्वारा वायुका दोप सात दिनमें, पित्तका दोप दस दिनमें और कफका दोप वारह दिनमें पच जाता है। यद्यपि दोपकी भयंकर अवस्थामे उक्त ग्रन्थके कर्त्ताने लंघनकी आज्ञा नहीं दी है, तथापि इससे हमारे सिद्धान्त पर किसी प्रकारका दोप नहीं आ सकता। कोई दोप आरम्भ होते ही महाभयकर या उग्र रूप नहीं धारण कर लेता। पहले वह साधारण या मध्यम अवस्थामे ही रहता है, उग्र अवस्था तक पहुँचनेमें उसे कुछ समय लगता है। यदि दोपके आरम्भ होते ही उपवासका भी आरम्भ हो जाय तो निश्चय है कि उस दोपका नाश ही होगा। सुश्रुतके अनुसार तो शरीरको हल्का करनेवाली सभी क्रियाएँ लंघनके अन्तर्गत आ जाती हैं और चरकने वायुसेवन और व्यायाम आदिको भी लघनके अन्तर्गत ही माना है। यदि किसी रोगीके पेटमें वहुतसा अन्न हो और वैद्य उस अन्नको वमन या विरेचनकी सहायतासे वाहर निकाल दे तो उसकी यह क्रिया

लंघनसे भी कहीं बढ़कर होगी, क्योंकि लंघनकी सहायतासे उतना अन्न पचानेमें उससे कहीं अधिक समय लगता, जितना वमन या विरेचनमें लगता है। वायुसेवन और व्यायाम आदिसे भी दोषोंका नाश ही होता है। इन चिकित्साओंको लंघनके अंतर्गत माननेसे लंघनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है और उनसे सिद्ध होता है कि वह बहुत ही उपकारक क्रिया है। सुश्रुतके अनुसार लंघनसे ज्वरका नाश होता है, अग्निका दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। उसके अनुसार यदि लंघनके उपरान्त मल-मूत्रका त्याग उचित रीतिसे हो, भूख प्यास न सही जाय, शरीर हल्का जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हो और इन्द्रियाँ निर्विकार और सुखी हों तो समझना चाहिए कि लंघन ठीक और उचित रीतिसे हुआ है। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि अच्छी तरह और नियमपूर्वक लंघन करनेके परिणामस्वरूप ऊपर लिखी बातें होती हैं।

ज्वरकी दशामें तो लंघनको सभीने उपयुक्त ही नहीं, बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है। चक्रदत्तने कहा है कि नवीन ज्वरका क्षय लंघनकी सहायतासे करे और आत्रेय ऋषिकी आज्ञा है कि ज्वरके आरम्भमें लंघन करावे। वैद्यकमें वमन, विरेचन, निरूहवस्ति (इन्द्रियजुलाब) और शिरोविरेचन ये चार प्रकारकी संशुद्धियाँ मानी गई हैं। ये संशुद्धियाँ ज्वरमें कराई जाती हैं, पर उपवासको शास्त्रमें इन संशुद्धियोंसे कहीं अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ माना है। चरक और वाग्भट्टने कहा है कि दूषित वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको मन्द कर देते हैं और आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रों या रोमकूपोंको आच्छादित करके ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोषादिको पचाने, जठराग्निको दीप्त करने और शरीरके छिद्रोंको शुद्ध करनेके लिए लंघनकी आवश्यकता होती है। इस अवसर पर कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि जो दोष अग्निको मन्द करते हैं उनके शमनके लिए लंघनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

जिन पाश्चात्य डाक्टरोंने उपवास-चिकित्साका आविष्कार किया है वे उपवास-कालमें रोगीको केवल शुद्ध जल देते हैं। वैद्यकके ग्रन्थोंमें भी उपवास-कालमें केवल जल ही देनेका विधान है। जल हमारे यहाँ अमृत माना गया है और यह कहा गया है कि उससे सभी दशाओंमें उपकार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्यकके ग्रन्थोंमें यह भी लिखा है कि वैद्यको चाहिए कि लंघन इस प्रकार करावे कि

जिसमे वलका नाश न हो, क्योंकि आरोग्यता वलके ही अधीन है और यह सब कार्य्यक्रम आरोग्यताके लिए ही है। उपवासचिकित्साके आविष्कर्त्ताओंका भी ठीक यही सिद्धान्त है। सारांश यह है कि उपवाससम्वन्धी सिद्धान्त न तो हमारे आयुर्वेदके लिए नये ही हैं और न हमारे यहाँके उपवाससम्बन्वी सिद्धान्तोंके किसी प्रकार प्रतिकूल ही हैं। आयुर्वेदसे पाश्चात्य डाक्टरोके उपवास-सिद्धान्तोंका सव प्रकारसे समर्थन और पोषण ही होता है।

प्रकृति और उपवास।

पश्चिममें उपवास-चिकित्साका आविष्कार, वल्कि यों कहिए कि पुनरुद्धार ऐसे लोगोंने किया है जो अपने जीवनके आरंभ-कालमें वहुत ही दुर्वल रहा करते थे और मुद्दतों तक तरह तरहकी दवाइयाँ करके अपने जीवनसे एकदम निराश हो चुके थे। उन लोगोंने जव देखा कि ओषधियोंसे रोग किसी प्रकार दूर नहीं होते और सुना कि ओपधिसेवनसे रोगोंकी सख्या और भी वटती है तव उन्हें किसी ऐसी चिकित्सा-प्रणालीकी चिन्ता लगी जो मनुष्यके लिए विलकुल स्वाभाविक या प्राकृतिक हो और जिसमें लाभके सिवा किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना न हो। उन लोगोंने खोज और परिश्रम करके एक नई पर प्राकृतिक प्रणाली ढूढ़ निकाली। ज्यों ज्यों उनकी प्रणालीका प्रयोग होता गया और ज्यों ज्यों उनका अनुभव वढता गया त्यों त्यों उन्हें इस वातके दृढ़तर प्रमाण मिलते गये कि वास्तवमें रोगीका सवसे अधिक कल्याण केवल उपवाससे ही हो सकता है। अव तो यूरोप और अमेरिका आदि देशोंमे वहुतसे ऐसे चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें केवल उपवास और जल-चिकित्सा आदिसे ही रोगीको चगा किया जाता है। वम्वईमें डाक्टर वहरामजी फीरोजशाह मादनने भी इसी प्रकारका एक चिकित्सालय खोला है। इन चिकित्सालयोंमें रोगी पर जो अनुभव किये गये हैं उन्हें जानकर वड़ा ही कुतूहल और आनन्द होता है।

साधारण समझका आदमी भी यह वात भली भाँति समझ सकता है कि यदि मनुष्य और विशेपत रोगीको भूख न हो तो जवरदस्ती खिलानेसे शरीरका वहुत अनिष्ट होता है—उसे वडी हानि पहुँचती है। ज्वर, सिरदर्द, अनपच आदि वहुतसे रोगो और यहाँ तक कि मानसिक चिन्ताओके कारण भी मनुष्यकी

भूख मारी जाती है। उस समय शरीरकी शक्ति बनाये रखनेके उद्देश्यसे जो कुछ जबरदस्ती खाया जाता है वह शक्ति बनाये रखनेकी अपेक्षा उसे बिगाड़ना प्रारंभ कर देता है। उस अवस्थामें मनुष्यको इस बातके मिथ्या भ्रममें न फँस जाना चाहिए कि दो चार रोज भोजन न मिलनेके कारण ही हमारे प्राण निकल जायँगे। हमारे लिए भय या चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। प्रकृति हमारी सबसे बड़ी रक्षक है। वह बहुत अच्छी तरह जानती है कि किस अवसर पर क्या होना चाहिए। प्रकृति-देवीकी गोदमें पड़कर सुखी और स्वस्थ बननेका अभ्यास करो, रोगोंके विकार दूर करनेका हेतु या कारण समझो, विषके समान कडुई दवाओं और पैने नश्तरोंके कारण होनेवाले भीषण कष्टोंसे बचने और एक दो दिनके थोड़से शारीरिक कष्ट सहनेका अभ्यास करो और तब देखो कि तरह तरहकी दुर्बलताओं और रोगोंसे मुक्त होकर तुम कितनी जल्दी प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाते हो। याद रक्खो, हमें जितनी शारीरिक वेदनायें होती हें वे सब किसी न किसी रूपमें प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करनेके कारण ही होती हैं। जो मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करता है, प्रकृतिका मनन करके अपने आपको उस पर छोड़ देता है और कष्टके समय उसे छोड़कर किसीकी सहायता नहीं लेता, वही सबसे बड़ा भाग्यवान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे ज्यादह सुखी है। साथ ही यह भी याद रक्खो कि तरह तरहकी दवाइयोंकी पुड़ियाँ खाना, शीशियाँ पीना, गोलियाँ निगलना, नश्तर लगवाना आदि बातें मनुष्यके लिए कभी स्वाभाविक नहीं हो सकतीं। शरीरकी सृष्टि प्रकृतिसे होती है और उसका पालन-पोषण तथा रक्षण आदि भी प्रकृतिके नियमानुसार ही हो सकता है, अन्य उपायों वा नियमोंसे नहीं। प्राकृतिक-चिकित्साके विरोधी यह बात कह सकते हैं कि बड़े बड़े रोग ओषधियों और चीर-फाड़से अच्छे हो जाते हैं, पर उन्हें यह बात भूल न जानी चाहिए कि उन सबकर रोगोंका बीजारोपण भी स्वयं उन्हीं ओषधियों और चीर-फाड़से ही होता है। अथवा किसी दशामें यदि उन ओषधियों और चीर-फाड़से न हो तो कमसे कम प्राकृतिक नियमोंके उल्लंघनसे अवश्य होता है। यदि आरंभसे ही मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करे और अप्राकृतिक उपचारोंसे बचता रहे तो उसे कोई रोग उत्पन्न भी हो तो प्रकृतिकी शरणमें जाते ही वह अवश्य दूर हो जाता है।

शरीर और उपवास।

शरीर-शास्त्र वेत्ताओंका मत है कि भोजन पचानेके लिए अपने शरीरकी जीवन-शक्ति पर हमें उतना ही वोझ डालना चाहिए जितनेसे हमारे शरीरका काम भलीभाँति चलता रहे। उस पर व्यर्थ और आवश्यकतासे अधिक वोझ डालकर उसका अपव्यय और ह्रास करना एक प्रकारकी आत्म-हत्या है। यह तो हुई साधारण और नित्यप्रतिके कामकी वात। अव विशेष अवसरो और अवस्थाओंको लीजिए। अपने शरीरको थोडी देरके लिए रसोई-घर समझ लीजिए और पक्वाशयको रसोइया मानिए। यदि आँधी चलनेके कारण रसोईघरमें वहुतसी धूल और गर्द भर जाय, उसकी दीवारकी दोचार ईंटें निकल जायँ, छप्परका कुछ अंश टूटकर गिर पडे अथवा इसी प्रकारका और कोई व्यत्यय उपस्थित हो तो विचारिए कि उस समय आपका क्या कर्तव्य होगा? आप पहले रसोई-घरको झाड वुहारकर गर्द और धूलसे साफ करेंगे और उसके टूटे हुए अशोंकी मरम्मत करके उसे काम चलाने योग्य वना देंगे अथवा तुरन्त रसोइयेको आज्ञा देंगे कि वह उस टूटे फूटे और गन्दे स्थानमें ही तुरन्त आपके लिए रसोई वनावे? उस समय आप भडारमें रक्खे हुए सत्तू, चने, गुड या मिठाई आदिसे अपना काम चला लेगे या रोजकी तरह वढिया दाल, भात, कढ़ी, तरकारी, चटनी और रोटी आदिकी आशा रखेगे? हम पहले ही कह आये है कि प्रकृति हमारी सव आवश्यकताओंको समझती है और उसकी पूर्तिके उपाय वह पहलेसे ही कर भी रखती है। हमारे शरीरके भीतर चरवी आदि अनेक ऐसे पदार्थ भरे पडे हैं जो आवश्यकता और अडचनके समय वडी सरलतासे हमारे पक्वाशयकी प्रधान आवश्यकताको पूरा कर सकते है। यह तो हुई उस समयकी वात जव कि हमारी अग्निको और कामोंसे छुट्टी मिल चुकी हो और वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पहुँच कर अपना नित्यकृत्य करनेके लिए तैयार वैठी हो। रोग और व्याधि आदिके समय तो उसे अपनी सारी शक्ति दोषोंको नष्ट करनेमें ही लगा देनी पडती है। उन दशामें यदि हम उससे कोई और काम ले, उसका वल किसी दूसरी तरफ लगादे तो यह कव सम्भव है कि वह हमारे शरीरके दोषोंको वाहर निकालने या नष्ट करनेमें समर्थ होगी। उस अवस्थामें हमे यही उचित है कि

जहाँतक हो सके हम उसे सब प्रकारके बोझोसे हलका कर दें, जिसमें वह अपनी सारी शक्ति हमें नीरोग बनानेमें लगा सके। रोग आदि होने पर हमारी अग्नि स्वय को, दूसरा काम नहीं करना चाहती और यही कारण है कि बहुधा रोगोंमें लोगोंकी भूख मारी जाती है। उस समय नित्यक्रिया समझकर बलपूर्वक पेटमें भोजन उतारा जाता है और रोगको मनमाना बढ़नेके लिए अवसर दिया जाता है। यहाँतक कि लोग भूख न लगनेको भी एक रोग ही समझ बैठते हैं! उनकी समझमें यह नहीं आता है कि जठराग्नि हमे सूचना दे रही है कि-" रसोईघरकी मरम्मतकी आवश्यकता है, मैं अपना काम भंडारमें रक्खी हुई चीजोंसे चलाकर वह मरम्मत कर डालूँगी। " हमारे शरीरमे बहुतसे ऐसे फाल्तू पदार्थ हे जो उपवास-कालमें हमारे शरीरका काम चला देते हैं और फिरसे जिनकी भरती बादमे होती रहती है। हमारे शरीरमे बहुतसे ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो वृद्धावस्थाके लिए जमा होते हैं, पर जब बीचमें शरीरकी मरम्मतकी आवश्यकता होती है तब उन्हींसे काम चल जाता है और मरम्मत हो चुकने पर धीरे धीरे उनकी पूर्ति होती रहती है। ये रक्षित पदार्थ आवश्यकता पडने पर तुरंत ही काममें लाये जा सकते हैं और उनका व्यय हो जानेके कारण शरीरके नित्यके कामोमे कोई बाधा नहीं पड़ती। यदि लोग यह समझते हों कि भूखे रहनेसे मनुष्योंके प्राणों पर आ बनती है अथवा वह असमर्थ और बेकाम हो जाता है तो यह उनकी भूल है। इस सम्बन्धमें कुछ विशेष अनुभव-सिद्ध बातें आगे चलकर कही जायँगी।

मन और उपवास।

उपवाससे शरीरकी शुद्धि तो होती ही है, मनके साथ भी उसका प्राय वैसा ही सम्बन्ध है। जिस समय किसी शारीरिक वेदना या रोगकी उत्पत्ति होती है, उस समय उस वेदना या रोगको नष्ट करनेके लिए हमारी भूख बंद हो जाती है। असाधारण मानसिक चिन्ता, कुढ़न या क्रोध आदिका भी पाचन-क्रियापर वैसा ही प्रभाव पड़ता है, उससे हमारे शरीरका अनिष्ट सम्भावित होता है और उसी अनिष्टसे रक्षित रहनेके लिए प्रकृति हमारे मस्तिष्कको पोषकद्रव्य पहुँचाना मन्द कर देती है। तात्पर्य यह कि हमारी शारीरिक

क्रियामे जहाँ किसी प्रकारका व्यतिक्रम होता है वहीं हमारी भूख वन्द हो जाती है और इस प्रकार वह उपवासके महत्त्वकी घोषणा करती है । जिस प्रकार उपवास हमारे शारीरिक दोपोंको नष्ट करता है उसी प्रकार वह हमारे मानसिक विकारोको भी दूर कर देता है। कई वडे वडे उपवास-चिकित्सकोको अनेक रोगियोंके सम्वन्धमे यह अनुभव करके वहुत ही आश्चर्य्य हुआ कि उपवासका मनपर पडनेवाला लाभदायक प्रभाव शरीरपर पड़नेवाले प्रभावकी अपेक्षा कहीं अधिक था। इस देशके वैद्यकके ग्रन्थोंमे लिखा हुआ है, कि उपवाससे मन और आत्माकी भी शुद्धि वोती है, और पाश्चात्य डाक्टरोके अनुभव करने पर यह वात वहुत सत्य निकली है। जो रोगी किसी अच्छे चिकित्सककी देख-रेखमे दो एक लम्वे उपवास कर लेते हैं, कठिन विपयों और समस्याओं पर विचार करनेकी उनकी शक्ति पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक वढ जाती है। इसका कारण यही है, कि हमारे शरीरमें अधिक भोजन आदिके कारण जो विकार एकत्र हो जाता है, हमारे शरीरकी शक्तियोके लिए वह वहुत ही हानिकारक होता है। वह उनका वहुतसा अश अपने साथ जूझनेके लिए खींच लेता है और इस प्रकार उनके हासका कारण होता है। पर उपवासके कारण हमारे शरीरका सारा विकार नष्ट हो जाता है और तव हमारी शक्तियोंको किसी शत्रुका विरोध करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। उस दशामे हम उनसे पूरा पूरा काम लेनेमे समर्थ हो जाते है। हमारी सभी इन्द्रियोंमे वल आ जाता है और वे अपने अपने कार्य्य सुभाते और सरलतासे करने लगती हैं। जव उपवास हमारे शरीरको हर तरहसे लाभ पहुँचा सकता है तव कोई कारण नहीं कि वह हमारे मन और आत्माको सस्कृत न कर सके और उनका वल वढा न दे। मानसिक विकारो और दोषोंको दूर करनेमे भी उपवास उतना ही समर्थ है, जितना शारीरिक विकारो और दोपोंको नष्ट करनेमें है। आरोग्यताके इच्छुकोंके अतिरिक्त मानसिक संस्कृति चाहनेवालोंके लिए भी उपवास अत्यन्त लाभदायक है। इसके अतिरिक्त जिस मनुष्यके शरीरमें कोई विकार न रह जायगा और जिसकी सभी शारीरिक क्रियाये सरलतापूर्वक होती रहेंगी उसका मन भी अवश्य ही सदा प्रसन्न और सवल रहेगा।

शारीरिक वल और उपवास।

जो लोग सैकडो पीढियोंसे दिनमें तीन तीन और चार चार वार भोजन करते आये हों और एकाध दिन भोजन न मिलनेके कारण जिनका शरीर एकदम शिथिल पड जाता हो, उनके मनमें उपवासके सम्बन्धमें तरह तरहकी शकायें उत्पन्न होना वहुत ही स्वाभाविक है। जिस युगके लोग अन्नको ही प्राण मानते हों उस युगमें लोगोंको पखवाड़ा वल्कि महीनोंतक निराहार रहनेके गुण सहाजमें नहीं समझाये जा सकते। केवल यह कह देना कि महीने पन्द्रह दिन तक निराहार रहनेसे मनुष्यका शरीर सव प्रकारसे नीरोग और वलिष्ठ हो जाता है, यथेष्ट नहीं है। इसपर लोगोको तरह तरहकी शकाये हो सकती हैं और इस पुस्तकमें उन शकाओंका समाधान होना वहुत आवश्यक है। इस स्थल पर उन्हीं शकाओं पर विचार किया जायगा।

अकाल आदिके समय हम लोग हजारो आदिमियोंको विना अन्नके भूखो मरते हुए देखते और सुनते हैं और इसी लिए उपवासके सम्बन्धमें सवसे पहले यही शंका हो सकती है कि विना अन्नके मनुष्य अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। इसलिए उपवास और भूखो मरनेमे जो अन्तर है उसका यहाँ वतलाना उचित जान पडता है। पहले वतलाया जा चुका है, कि प्रकृतिने हमारे शरीरमें वहुतसा ऐसा सामान भर रक्खा है, जो विशेप आवश्यकताके समय हमारे काम आ सकता है। जव हमें अन्न नहीं मिलता तव हमारे शरीरके उसी फालतू सामानसे हमारा काम चलता है। इस देशमें नवरात्र आदिके समय वहुतसे लोग नौ नौ दिन तक विना अन्न और जलके रह जाते हैं। वहुतसे लोग इससे भी अधिक दिनोंतक निराहार रहते हैं। उस कालमें उनका शरीर दुवला हो जाता है, चेहरा उतर जाता है और ठोकर वैठ जाती है। इस शारीरिक ह्रासका मुख्य कारण यही है कि उनके शरीरका फालतू सामान उनके पोपणमें लग जाता है। फालतू अंशके समाप्त हो जाने पर शरीरका पोषण उन पदार्थोंसे होने लगता है, जो हमारे शरीरके आवश्यक अंश हैं और जिनसे हमारे शरीरका सगठन हुआ है। मनुष्य उसी समय मरता है जव कि शरीरके फालतू अशोकी समाप्तिके वहुत वाद उसके आवश्यक अश भी नष्ट हो चुकते हैं। जव तक मनुष्यके शरीरके आवश्यक

अंशोंसे पोषणका आरम्भ नहीं होता तब तक मनुष्य केवल दुबला ही होता है, पर आवश्यक अंशोंके पोषणमे लग जानेके उपरान्त उसके शरीरकी ठठरी मात्र बच रहती है। उपवासकाल उसी समय तक माना जाता है जबतक कि शरीरका पोषण उसके फालतू पदार्थों पर होता रहे, पर जब आवश्यक अंशोंकी नौबत आ जाय तब वह उपवास नहीं बल्कि भूखो मरना है। आजतक ऐसा कभी नहीं सुना गया कि केवल दो तीन दिनतक अन्न न मिलनेके कारण ही कोई मनुष्य मर गया हो। उपवासके कारण मनुष्यको नियमित समय पर भले ही थोड़ी बहुत भूख लग जाय और उसके उपरान्त कुछ और समय टल जाने पर वह व्याकुल हो उठे, पर उसकी वह व्याकुलता अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। ज्यों ही हमारे शरीरके फालतू अंशोंसे हमारा पोषण आरम्भ होने लगेगा त्यों ही हमारी व्याकुलता जाती रहेगी। यह व्याकुलता कभी किसी समयमें एक या दो दिनसे अधिक नहीं ठहर सकती। इस स्थितिके उपरान्त जैसा कि आगे चलकर विस्तृत रूपसे बतलाया जायगा, मनुष्यके शरीरके फालतू अंश और उनके साथ रोग, विकार और दोष आदि पचने लगते हैं। उन सबके पच जानेके उपरान्त मनुष्यको एक बार फिर भूख लगती है और वही भूख वास्तविक होती है। यदि उस समय मनुष्यको भोजन न मिले तो फिर उसके शरीरके आवश्यक अंशोंकी बारी आ जाती है और इसके परिणामस्वरूप उसका शरीरान्त हो जाता है। यही कारण है कि एक विद्वान्ने उपवास और भूखों मरनेका अन्तर बतलाते हुए कहा है कि—"उपवासका आरम्भ भोजन छोड़ने और अन्त वास्तविक भूखसे होता है और भूखो मरनेका आरम्भ वास्तविक भूख और अन्त प्राण छूटनेसे होता है।"

जो लोग बहुत मोटे हों और अपनी मोटाई कम करना चाहते हों, उनके लिए उपवाससे बढ़कर उत्तम और सहज और कोई उपाय नहीं हो सकता। इससे उनके शरीरकी बहुत सी फालतू चरबी और दूसरे पदार्थोंकी समाप्ति हो जायगी। युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे लोगोंने केवल उपवासकी सहायतासे अपनी बहुत सी मोटाई कम कर दी है और वे आगेकी अपेक्षा कहीं अधिक सरलतासे चलने फिरने लगे हैं।

उपवासके आरम्भमे ही शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है, पर उससे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। अनुभवसे यह बात भी सिद्ध हो चुकी है

कि उपवासकालमें विशेष अवस्थाओंमें मनुष्यका शारीरिक बल आश्चर्य्यरूपसे बढ़ जाता है। स्वय डाक्टर मैकफेडनने, जिनके ग्रन्थसे इस पुस्तकके लिखनेमें बहुत सहायता मिली है और जिनका उपवाससम्बन्धी निजका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर बतलाया जायगा, वह प्रभाव जाननेके लिए एक प्रयोग किया था जो उपवासके कारण शारीरिक बल पर पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके दिन वे जमीन पर चित लेट गये और अपनी दोनों हथेलियों पर उन्होंने ढाई मन वजनके एक आदमीको खड़ा करके लेटे लेटे हाथोंके बल ऊपरकी ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमीको छातीसे प्राय तीन ही चार इंच ऊपर उठा सके थे, पर उपवासके अन्तिम और सातवें दिन जब उन्होंने उसी आदमीको अपनी हथेलियों पर खडा करके उसे ऊपरकी ओर उठाया तब वह मनुष्य उनके हाथोंकी पूरी ऊँचाई तक—छातीसे लगभग दो फुट ऊपर तक—उठ गया। अवश्य ही डाक्टर महाशयने उपवासकालमें व्यायाम नहीं छोडा था और नित्य वह दस मीलका चक्कर लगाते रहे थे। इसी प्रकार एक और आदमी था, जो उपवासके प्रथम दिन आध मन वजनका डंबेल अपने कन्धे तक भी न उठा सकता था, पर इक्कीस दिनोंतक उपवास करनेके उपरान्त उसने वही डंबेल सिरसे ऊपर उतनी ऊँचाई तक उठाया था, जितनी ऊँचाई तक कि उसका हाथ उठ सकता था।

मस्तिष्क और उपवास।

कुछ लोगोंको यह शका हो सकती है कि उपवास-कालमें मस्तिष्कका ह्रास सम्भावित है, पर यह बात भी बिलकुल व्यर्थ है। डा० एडवर्ड हूकर डेवी जो उपवासचिकित्साके आविष्कर्त्ता और सबसे बडे पक्षपाती हैं, कहते हैं कि उपवाससे मानसिक बल कभी क्षीण नहीं होता। उनके मतमे मस्तिष्कका पोषण जिन पदार्थोंसे होता है वे पदार्थ स्वय मस्तिष्कमे ही उपस्थित रहते हैं, शरीरके और किसी भागसे मस्तिष्क तक पोषक द्रव्य पहुँचानेकी आवश्यकता नहीं होती। उसका पोषण बिना अन्नके ही आपसे आप होता है, और वह अपना काम बराबर करता रहता है। उपवासकालमे प्राय बहुतसे लोग अपना नित्यका लिखने पढ़ने आदिका काम करते हुए देखे गये हैं। मनुष्यके शरीरको यदि तरह

तरहकी कलोका समूह मान लिया जाय, तो मस्तिष्क उन कलोको चलानेवाला प्रधान इजिन ठहर सकता है। जीवनकी सारी शक्तियोंका उद्गम मस्तिष्क ही है। रोग या निराहारके कारण उसके कार्य्यमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं हो सकता। मस्तिष्क जिस समय काम करते करते थक जाता है, उस समय उसकी गई हुई शक्ति आराम करनेसे ही लौटती है, चौकेमे जा वैठनेसे नहीं। रातभर आराम करनेके कारण मस्तिष्ककी और फलत सारे शरीरकी गई हुई शक्तियाँ लौट आती है और प्रात'काल मनुष्य कठिनसे कठिन मानसिक या शरीरिक परिश्रम करनेके योग्य हो जाता है। परीक्षा और अनुभवसे यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रात काल जलपान न करनेवाले लोग जलपान करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक, और रातको भोजन न करनेवाले लोग भोजन करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अधिक और भारी काम करनेमें समर्थ होते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि पेटसे व्यर्थ और अनावश्यक काम न लेनेके कारण मनुष्यकी वहुत सी शक्ति व्यर्थ नष्ट होनेसे वच रहती है। खेतों और खानो आदिमे कठिन परिश्रम करनेवाले लोगोंके अनुभवसे भी यह वात सिद्ध हो चुकी है।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। यदि पेटमे थोड़ासा भी भोजन हो और मस्तिष्कसे अधिक काम लिया जाय तो पाचन क्रियामे वड़ी वाधा पड़ती है। इसी प्रकार यदि पेट खूब भरा हो तो मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लिया जा सकता। ये दोनों ही काम परस्पर एक दूसरेके लिए वैसे ही वाधक हैं जैसे नींद आनेमें शोर और गुल। भोजनके कुछ समय वाद मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लेना चाहिए और मस्तिष्कसे सवसे अच्छा काम उसी समय लिया जा सकता है, जव कि पेटको अपनी चक्की चलानेसे फुरसत मिले। अत यह सिद्ध है कि उपवाससे मस्तिष्कके कामोंमें कोई वाधा नहीं पड़ती वल्कि उल्टे और उसमें सहायता मिलती है।

उपवासकालमें शरीरकी दशा।

जिस उपवासके गुण इस पुस्तकमें बतलाये गये है उसमें केवल जलको छोड़कर बाकी और सब प्रकारके खाद्य पदार्थ छोड़ देनेकी आवश्यकता होती है। जिस दिनसे आप उपवास करना चाहें उसी दिनसे आप भोजन आदि छोड़ सकते हैं और तब आपका उपवास आरम्भ हो जायगा। उपवासके पहलेसे एक दो अथवा अधिकसे अधिक तीन दिन बहुधा बड़े ही कष्टसे बीतते हैं और उन दिनोंका उतने कष्टसे बीतना बहुत ही स्वाभाविक भी है। प्रत्येक पुराना अभ्यास छोड़ने और नया अभ्यास करनेमें–चाहे वह नया अभ्यास कितना ही प्राकृतिक, सहज और लाभदायक क्यों न हो–सभी मनुष्योंको थोड़ा बहुत कष्ट अवश्य होता है। अपने शरीरको नये अभ्यासवाली परिस्थिति-तक ले जाने और उसके अनुकूल बनानेमें कुछ न कुछ परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। जो लोग उपवासचिकित्सालयमें अपनी चिकित्सा करानेके लिए जाते हैं, आरम्भके दिनोंमें उनमेंसे बहुतोंकी दशा बहुत खराब हो जाती है, उनकी आँखोंके सामने अँधेरा आ जाता है, सिरमें चक्कर आने लगते हैं, कै होती है और उन्हें यह जान पड़ता है कि हमारा शरीर एकदम खाली हो गया है। इसके अतिरिक्त और भी कई तरहके ऐसे लक्षण दिखाई पड़ते है जिनसे उनकी विकलता और कष्टकी चरम सीमा सी मालूम होने लगती है। पर ये सब लक्षण दो या तीन दिनसे अधिक नहीं ठहरते। उनकी असाधारण, पर केवल अभ्यासके कारण लगनेवाली और कृत्रिम भूख नष्ट हो जाती है और भोजनसे उनकी रुचि स्वयं ही हट जाती है। जो मनुष्य कष्टके ये दो तीन दिन बिता देता है उसे स्वास्थ्य और बलके राजपथ पर पहुँचा हुआ ही समझिए।

तीसरे या चौथे दिन भोजनसे जिसकी अरुचि हो जाती है उसकी दशा प्रायः वैसी ही हो जाती है जैसी दो तीन दिन बुखार आने और छूट जाने पर होती है। जीभका स्वाद बिगड़ जाता है और उस पर कुछ पीलापन आ जाता है। इन चिह्नोंको बहुत ही शुभ समझना चाहिए, क्योंकि इनसे सिद्ध होता है कि शरीरका विकार कितनी जल्दी जल्दी बाहर निकल रहा है। इसके बाद ही वे चिह्न प्रकट होने लगते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि शरीरके सारे विकार प्रायः बाहर निकल

चुके है। साँस अधिक सरलतासे और गहरी चलने लगती है और फेफडे अपना काम उत्तमतासे करने लगते हैं। पर इस अवसर पर यह वात भूल न जानी चाहिए कि वहुधा उपवास करनेवालोंके लक्षण एक दूसरेसे भिन्न हुआ करते हैं, और सव लोगोंमे समान रूपसे पाई जानेवाली वातें वहुत ही कम हैं। यदि एक ही मनुष्य दो वार अधिक दिनोंतक उपवास करे तो उसके दोनों वारके लक्षण एक दूसरेसे वहुत भिन्न होगे, पर इसमे सन्देह नहीं कि सव प्रकारके लक्षणोवाले उपवासोका फल निश्चयात्मक और एकसा स्वास्थ्यप्रद होता है। सवके परिणामस्वरूप शरीरके सारे विकार, दोप, विष और रोग आदि वाहर निकल जाते हैं और मनुष्यके शरीरमें वल और मुख पर तेज आ जाता है। सभी उपवास करनेवालोंको अन्तमे स्वाभाविक भूख लगती है और दिनपर दिन उनका शरीर अधिक वलिष्ठ और सुखी होने लगता है।

उपवासके आरम्भमे सिर-दर्द, चक्कर आदि तरह तरहके कष्टोंका मुख्य कारण यही है कि हमारा शरीर भीतरी मल और विकार वाहर निकालनेका प्रयत्न करता है। उस दशामें यदि गुदाके मार्गसे गरम पानीका एनिमा लिया जाय और पेट तथा कमरके ऊपरी भागमे हल्का सेक किया जाय तो पेटमेंसे मल और विकारके वाहर निकलनेमें और भी सुभीता हो जाता है और कष्टसे छुटकारा हो जाता है। उपवासके आरम्भमें कान तथा आँखमे भी पीड़ा होती है; पर उपवासके अन्तमें वे भाग भी विलकुल नीरोग हो जाते हैं। तरह तरहके इन कष्टो और उपावासोसे जो केवल आरम्भमे ही और वह भी शरीरकी सशुद्धिके लिए ही होते हैं, कभी घवराना न चाहिए। उस दशामें हमारे शरीरके प्रत्येक अग और प्रत्येक शक्तिको विकार और रोग आदि शत्रुओके साथ उसी प्रकार अपना सारा वल लगाकर लडना पडता है, जिस प्रकार जान पर आ वननेके समय किसी मनुष्यको अपने शत्रुके साथ अथवा अकेले जगलमे किसी जंगली जानवरके साथ लडना पडता है। ज्यों ज्यों कष्ट वढते जायँ त्यो त्यों यही समझना चाहिए कि विकारोका नाश हो रहा है और उनका अन्त समीप ही है। विकारोका नाश होते ही कष्टोंका भी अन्त हो जाता है और मनुष्यकी दशा आपसे आप सुधरने लगती है।

कुछ अवस्थाओंमें उपवास करनेवालोंके शरीरसे बहुत ही बदबूदार पसीना निकलता है। यह भी शरीरसे विकारके बाहर निकलनेका बहुत बडा लक्षण है। कुछ लोगोंकी जीभका स्वाद उपवासके चौथे या पाँचवें दिन बेतरह बिगड जाता है और उस दशामें यदि उन्हें वमन आवे तो कुछ आश्चर्य्य नहीं। किसी किसी उपवास करनेवालेका मुँह बहुत खट्टा हो जाता है और उसमेंसे बहुत लार बहती है। कभी कभी उसकी जीभ और होंठ पर छाले भी पड़ जाते हैं। बहुत अधिक मिठाइयाँ खानेवालों और पित्तके दोषवालोंको अपेक्षाकृत कुछ अधिक कष्ट होता है। कुछ उपवास करनेवालोको अठवारों तक कै होती रहती है। इसी प्रकारके और भी अनेक कष्ट होते रहते हैं। कष्टोंकी इस असमानताका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यके शरीरकी भीतरी अवस्था एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न होती है और प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें एक विलक्षण प्रकारका विकार होता है। अपनी स्थिति और सुविधाके अनुसार शरीर उन विकारोंको जिस मार्गसे और जिस प्रकार सरलतापूर्वक निकाल सकता है, वह उसी मार्गसे और उसी प्रकार उन्हें बाहर निकालता है। जिस मनुष्यके शरीरमें जितना अधिक विकार होता है उपवासकालमें उसे उतना ही अधिक कष्ट होता है और जिसे जितना अधिक कष्ट होता है, उपवासकी समाप्ति पर वह उतना ही अधिक नीरोग और स्वस्थ हो जाता है।

उपवाससम्बन्धी अनुभव।

उपवासकालमें शरीरकी जो दशा होती है, उसका सबसे अच्छा पता उन लोगोके लिखित अनुभवोंसे हो सकता है, जो प्रसिद्ध उपवासकरियोंने लिख रक्खे हैं। यद्यपि इस प्रकारके लिखित अनुभव सख्यामे बहुत अधिक और विस्तृत हैं तथापि उनमेंसे कुछ चुने हुए अनुभवोका साराश यहाँ पर दे देना बहुत ही उपयुक्त और आवश्यक जान पड़ता है। सबसे पहले डाक्टर बरनर मैकफेडनके निजके अनुभवको ही लीजिए जो प्राकृतिक चिकित्साके बडे अच्छे विद्वान् हैं, जिन्होंने कई प्राकृतिक चिकित्सालय खोलकर हजारो रोगियोंको अच्छा किया है और जिनके बनाये हुए तत्सम्बन्धी बीसियों अच्छे अच्छे ग्रन्थों और

विश्वकोशके पाँच खंडोंका आश्चर्यजनक प्रचार हुआ है । यह रामकहानी आपके मुँहसे ही सुनी जानेके योग्य है, अत वह आपके शब्दोंमें ही यहाँ पर दी जाती है । आप कहते हैं —

" मुझे पहले न्यूमेनियाके सिवा और भी कई छोटे मोटे रोग थे । उस समय तक उपवासचिकित्साके सम्बन्धमे कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे, पर मैंने विना उन्हें पढे ही अपने लिए चिकित्साके सिद्धान्त स्वयं स्थिर किये । ये सिद्धान्त मुझे इतने गुणकारी प्रतीत हुए हैं कि गत पन्द्रह वर्षोंसे मैंने इनके सिवा दूसरे चिकित्सा-सिद्धान्तोंका ग्रहण ही नहीं किया । पहले मै चार दिनतकके उपवास किया करता था और उस वीचमें भी कभी कभी एकाध सेव या और कोई फल खा लेता था । इसके वाद मैंने विना किसी प्रकारके भोजनके एक सप्ताहतक रहना निश्चय किया । उपवासके पहले दिन मैं तौलमें टाई सेर और दूसरे दिन दो सेर घट गया । इसी प्रकार मेरा शरीर नित्य तौलमें घटने लगा, पर साथ ही उस घटनेका मान भी घटता जाता था । यहाँतक कि सातवे दिन मै तौलमें केवल आध सेर घटा । सव मिलाकर सात दिनोंमे मेरा शरीर साढे सात सेर घट गया था ।

" और लोग तौलमें इससे अधिक घट सकते हैं, पर मेरे कम घटनेका मुख्य कारण यह था कि मैं नित्य खूव व्यायाम करता था । मैं रोज दस मीलका चक्कर लगाया करता था । इस वीचमें उपवासके केवल दूसरे दिन मुझे सवसे अधिक दुर्वलता मालूम हुई थी । मैं सवेरे उठते ही टहलने चला जाता था । आरम्भमे मुझे कुछ दुर्वलता मालूम होती थी, पर दो एक मील चल चुकनेके वाद वह दुर्वलता न रह जाती थी । किसी स्थानपर थोडी देर तक वैठ जानेके उपरान्त उठनेके समय भी मुझे वहुत दुर्वलता जान पड़ती थी । उस दिन तक मुझे कुछ अधिक घवराहट रही । मैं अपने नित्यके काम वरावर और नियमपूर्वक किया करता था । मानसिक परिश्रम करनेमें मुझे और दिनोंकी अपेक्षा कम कष्ट होता था और मेरा मस्तिष्क विलकुल स्वच्छ जान पडता था । पेटमे जो थोड़ी वहुत गडवड़ी होती थी वह वहुतसा ठंढा पानी पीनेसे शान्त हो जाती थी । उपवासके छठे और सातवे दिन वड़े ही आरामसे वीते थे । यद्यपि मैं समझता था कि थोड़े प्रयत्नसे ही मैं और तीन चार सप्ताह तक उपवास कर सकता हूँ, तथापि उद्देश्य

पूरा हो जानेके कारण मैंने वैसा करनेकी आवश्यकता न समझी । चौथे दिन मेरी इच्छा कुछ खानेकी हुई थी । साधारणत इस प्रकारकी भूखसे बचनेके लिए मनको किसी दूसरी तरफ लगा देनेसे बहुत लाभ होता है । पर उस दिन मुझे कोई काम न था, दो चार दोस्तोंसे बातचीत करनेके बाद भी समय बच ही गया। भूख अधिक जोर कर रही थी, इसलिए मैं किसी भोजनागारमें जानेके विचारसे चल पड़ा । कुछ दूर चलनेके बाद मेरी प्रवृत्ति बदल गई और मैं भोजनागारमें जानेके बदले पासकी एक व्यायामशालामें चला गया और आध घंटे तक मैंने वहाँ खूब कसरत की । उस समय उपवास छोड़नेकी मेरी इच्छा एकदम जाती रही । अवश्य ही इन दिनों मेरा चेहरा बहुत उतर गया था और आँखे बहुत धँस गई थीं । पर सातवें दिन मेरे शरीरमें आश्चर्यजनक बल आ गया था । उपवासके मध्यमें तो मैं केवल पचास पाउंडका डबल ही उठाता था, पर उसके अन्तिम दिन मैंने पहले साठ तब सत्तर और अन्तमें सौ पाउंडतकका डबल उठा लिया । उसी दिनसे मैंने निश्चय कर लिया कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि उपवास करनेसे शरीरकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है । ”

मिस हाल नामकी एक महिलाको एक बार लकवा मार गया था । जब अनेक प्रकारके औषधोपचारसे उनका रोग अच्छा न हुआ तब अन्तमें उन्होंने चालीस दिनों तक उपवास किया, इससे उनका शरीर एकदम निरोग हो गया था । अपने उपवासके सम्बन्धमें वे लिखती है ——

“ उपवासके चालीस दिन बितानेमें मुझे बहुत अधिक कठिनता नहीं हुई । जब कभी मुझे अधिक भूख मालूम होती थी तब उसे शान्त करनेके लिए मैं केवल पानी पी लेती थी । आरम्भमें मेरे मित्र, सम्बन्धी और शुभचिन्तक मुझसे भोजनके लिए बहुत आग्रह किया करते थे, पर मुझे स्वभावत बिना भोजनके रहना ही अधिक उत्तम और सुखप्रद जान पड़ता था, इसीलिए मैं उन लोगोंको साफ जवाब दे दिया करती थी ।

“ उपवासकालमें मैं नित्य एक डाक्टरके आफिसमें छ घंटे तक काम किया करती थी और नित्य बहुत दूर तक पैदल चला करती थी । उपवासके चौथे दिनसे मैं उतनी तेजीसे चलने लगी कि जितनी तेजीसे पहले कभी नहीं चल सकती थी । पहले बीस दिनोंमें ही मेरे शरीरमें बहुत कुछ शक्ति और फुरती

आ गई थी । उन्हीं दिनों मुझे आरोग्यताका वास्तविक सुख मिलने लगा और शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि न रह जानेके कारण मैं विलकुल निश्चिन्त हो गई थी ।

" मेरे शरीरका मास धीरे धीरे वहुत कम होता आता था और कुछ अधिक सरदी भी मालूम होती थी । मैं समझती हूँ कि यदि मैं जाडेके दिनोंमें उपवास करती तो सरदीके कारण मुझे और भी कठिनता होती । उपवासकालमे मुझे सवसे वडा लाभ यह हुआ कि मेरी विचार-शक्ति वहुत वढ़ गई थी । उपवासके वीस दिन वीत जानेके वाद भोजन करनेके लिए मेरे मित्रोका आग्रह और भी वढ़ गया था, क्योंकि उन दिनों मैं देखनेमें वहुत ही दुर्वल जान पडती थी । पर मैं उस ओरसे एकदम निश्चिन्त थी और मुझे भोजनकी कोई आवश्यकता जान न पड़ती थी । कभी कभी मेरी इच्छाके विरुद्ध भी मेरी आँखे झपने लगती थीं और मुझे चक्कर सा मालूम होता था । मुझे नीद वहुत अधिक आती थी और मैं सन्ध्याके सात वजे ही विस्तर पर जाकर पड़ जाती थी । उस समय मुझे वहुत अधिक थकावट मालूम होती थी ।

" उपवासके अट्ठाईसवें दिन मुझे विशेष कष्ट हुआ था । मेरा वायाँ हाथ जिसे लकवा मार गया था, अपेक्षाकृत वहुत अधिक सूख गया था और मुझे उसकी चिन्ताने आ घेरा था । उस समय यह वात मेरी समझमें न आई थी, कि प्रकृति मेरे हाथके रोगका नाश कर रही है ।

" उन्तालीसवें दिन डाक्टरने मेरी जीभकी परीक्षा की । उस दिन उसे मेरा शरीर वहुत ही स्वस्थ दशामें जान पड़ा । उस दिन उसने कह दिया कि अव तुम्हें भूखे रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । चालीसकी सख्या पूरी करनेके विचारसे और एक दिन मैंने भोजन नहीं किया । उस अन्तिम दिन मैं वड़े ही आनन्दमे रही और मैंने नित्यकी अपेक्षा कहीं अधिक काम किया । इन चालीस दिनोमे मैं तौलमे प्राय सत्ताईस पाउड घट गई थी । "

" इकतालीसवें दिन मैंने आधा सन्तरा खाया, पर वह आधा सन्तरा भी मुझे जवरदस्ती खाना पड़ा था । क्योंकि उस समय मुझे तनिक भी भूख न थी । सन्तरेमे भी मुझे कोई स्वाद न आता था । उसके दूसरे दिनसे मुझे भूख लगने

लगी और मैंने दो दो घटोंके बाद आधा आधा सन्तरा खाना आरम्भ किया। इस प्रकार धीरे धीरे मेरी भूख बढ़ती गई। उपवास-कालके बीतनेके तीन सप्ताह बाद मैं इच्छानुसार सब चीजें खानेके योग्य हो गई। तबसे मेरा शरीर बहुत ही नीरोग है और मेरे जिस हाथको लकवा मार गया था उसमें पहलेकी अपेक्षा अधिक बल आ गया है।"

प्राय: तीस वर्षसे अधिक हुए कि डाक्टर हेनरी एस० टैनरने एक बार चालीस दिनों तक उपवास किया था। आपने अपने उपवासके आरम्भिक पन्द्रह दिनों तक जल भी नहीं पीया था। उपवासचिकित्सकोंका मत है कि भोजनके बिना तो मनुष्य जीवित रह सकता है, पर जलके विना उसके प्राण नहीं बच सकते। डाक्टर टैनरने अपने निजके अनुभवसे इस सिद्धान्तको भी बहुतसे अंशोंमें खंडित कर दिया। पर इसमें सन्देह नहीं कि जिस दिनसे उन्होंने पानी पीना आरम्भ किया था उस दिनसे उनका बल बराबर घटने लगा था। पहले ही जिस समय उन्होंने जल पीया था, एक समाचारपत्रके संवाददाताके साथ उन्होंने दौड़नेकी शर्त लगाई थी। संवाददाता समझता था कि इतने दिनों तक निराहार रहनेके कारण डाक्टर महाशयमें दौड़नेकी कौन कहे, चलनेकी भी शक्ति न होगी। इस तथा और भी कई कारणोंसे डा० टैनरके उपवासकी युरोप और अमेरिकामें खूब चर्चा फैली थी। उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद डाक्टर टैनर एकान्तवास करनेके लिए किसी जंगलमें चले गये थे। समाचारपत्रोंमें उनकी मृत्युका झूठा समाचार छप गया था। पर हालमें डाक्टर मेकफेडनने उनके पास एक पत्र भेज कर उनसे प्रार्थना की थी कि वे उपवासके सम्बन्धमें अपना कुछ अनुभव लिख भेजें। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार करके उपवासके बहुतसे लाभ भी लिख भेजे थे। बहुत वृद्ध हो जाने पर भी वे अब तक बड़े ही हृष्ट पुष्ट और नीरोग हैं।

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेनने जो एक बार भारत भी हो गये हैं, उपवासके सभी गुणोंको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। उन्हें जब कभी जुकाम या बुखार होता तभी वे तुरन्त उपवास करते थे। उपवास-चिकित्सा सम्बन्धी उनका लिखा हुआ "At the Appetite Cure" नामक एक बहुत अच्छा ग्रन्थ भी है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जब तक खूब भूख न लगे तबतक कभी भोजन न करना चाहिए। अमेरिकाके अप्टन सिंक्लेअर नामक

सुप्रसिद्ध लेखकने उपवाससे वहुत कुछ लाभ उठाया है और यथासाध्य उसका समर्थन करके लोगोको उसके अनन्त गुण वतलाये हैं।

सवसे अधिक लंबा उपवास रिचर्ड फासेल नामक एक व्यक्तिने किया था। इसने नव्वे दिनों तक किसी प्रकारका आहार ग्रहण नहीं किया था। फासेलको भीषण रूपसे जलोदर रोग हो गया था और उसके पैरो तकमें वहुत सूजन आ गई थी। इस रोगके कारण उसका शरीर तौलमें प्राय पाँच मन हो गया था। वह एक होटलका मालिक था, पर शरीरके वहुत अधिक भारी और रोगी हो जानेके कारण वह चलने फिरनेमे नितान्त असमर्थ हो गया था। जव वह सव प्रकारके औषधोपचारसे एकदम निराश हो गया तव उसने उपवासकी शरण ली। एक वार उपवास करनेके उपरान्त वह अच्छा हो गया था, पर उपवासके अन्तमे उसने भोजन करनेमें कई भारी भूले कीं, जिससे वह फिर वीमार हो गया। उस समय उसका शरीर तौलमे घट कर प्राय पौने चार मन रह गया था। दूसरी वार उसने नव्वे दिनों तक उपवास किया। उसके ये दोनों उपवास डा० मैकफेडनकी देखरेखमे हुए थे। इतने अधिक दिनोंका उपवास शायद ही और किसीने आज तक किया हो। अपने उपवासकालका अधिकाश उसने या तो काम करनेमें और या व्यायाम करनेमें ही विताया था। दूसरे उपवासके आरम्भिक चालीस दिनों तक वह नित्य पन्दरह मील पैदल चला करता था और इसके अतिरिक्त वहुत कुछ कसरत भी करता था। भूखके कारण उसे केवल पहले सप्ताहमे ही कुछ कठिनता और वेचैनी हुई थी, इसके वाद उसे कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। इसके वाद उसे फिर कभी भूख लगी ही नहीं। उपवासकालमें वह नित्य पाँच छ वडे वडे गिलास पानीके पीता था और कभी कभी उनमे दो चार वूँद नींवूका रस भी छोड लेता था। उपवास समाप्त करनेके उपरान्त तीन चार दिन तक भी उसके पेटमें किसी प्रकारका भोजन न ठहरता था। इसके वाद धीरे धीरे उसे भोजन पचने लगा और उसका शरीर विलकुल नीरोग और आगेसे वहुत हल्का हो गया।

इस अवसर पर हम दो एक ऐसे उदाहरण भी दे देना चाहते हैं, जिनसे यद्यपि उपवासके दैनिक क्रम आदिका तो पता नहीं चलता, पर उसकी सर्वश्रेष्ठ उपयो-

निताका पता अवश्य लगता है। सन् १९०३ ई० में अमेरिकामें एक मनुष्यको अचानक एक रिवाल्वरके छूट जानेसे गोली लग गई और वह गोली उसके गुरदे, जिगर और दाहिने फेफडेको चीरती तथा पाँच पसलियाँ तोडती हुई निकल गई। बडे बड़े डाक्टरोंने उसे देखकर कह दिया था कि यह किसी प्रकार नहीं बच सकता और थोडी ही देरमें मर जायगा। पर वह मनुष्य उपवास-चिकित्साका पक्षपाती था इसलिए उसने दस दिनों तक बिल्कुल कुछ न खाया। इस बीचमें प्रकृतिको उसे चगा करनेका समय मिल गया और वह एक मासके उपरान्त बड़े आनन्दसे चलने फिरनेके योग्य हो गया। इसी प्रकार एक और आदमीको रेलमें घुटना दब जानेके कारण बहुत बड़ी चोट आ गई थी। डाक्टरोंने महीनों उसके शरीरमें पिचकारियोंसे अफीम तथा दूसरे मादक द्रव्य पहुँचाये, बराबर व्हिस्की और दूधका सेवन कराया और पसेरियों दवाइयाँ उसके पेटमें उतार दीं। पर किसीसे कुछ भी फल न हुआ और वह मनुष्य तौलमें पैंतालीस सेर घट गया। अन्तमे डाक्टरोंने निराश होकर उसकी चिकित्सा छोड दी और तब वह उपवास-चिकित्सकोंके पाले पड़ा। पाँच मास तक बिना किसी प्रकारके अन्नके रहकर अन्तमें वह मनुष्य सब प्रकारसे नीरोग और हट्टा कट्टा हो गया।

इसी प्रकार और भी सैकड़ों हजारों ऐसे आदमियोंके वर्णन दिये जा सकते हैं जो चालीस चालीस और पचास पचास दिनोंतक उपवास करके अजीर्ण, बवासीर, गरमी, कण्ठमाला, तापतिल्ली आदि सब तरहके रोगोंसे मुक्त हो गये हैं। यदि उन सबके विवरण सग्रह किये जायँ तो एक बहुत बड़ा पोथा हो सकता है। अँगरेजीमे यह पोथा प्राय तीन हजार पृष्ठोंमें मौजूद भी है, जिसमें हजारों रोगियोंके विवरणके अतिरिक्त सैकडों ऐसे रोगियोंके चित्र भी हैं, जिन्हें बड़े बडे डाक्टरोंने जवाब दे दिया था और जो केवल उपवासकी सहायतासे ही बिलकुल चंगे और नीरोग हो गये हैं।

उपवास कालमें भयके चिह्न।

साधारणत उपवास-कालमे किसी प्रकारका भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। डा० मैफफेडन जोर देकर यह बात कहते हैं कि मेरे हजारों रोगियोंमिसे जिन्हें मैंने लम्बे चौड़े उपवास कराये, एक भी नहीं मरा, और प्राय प्रत्येक दशामे उपवाससे सदा लाभ ही हुआ, हानि कभी नहीं हुई। तथापि जो लोग बहुत अधिक रोगी, दुर्बल या असमर्थ हो गये हों उन्हें भयके कुछ चिह्नोंका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

उपवास-कालमें कभी तो रोगीकी नाडी, बहुत तेज चलने लगती है और कभी बहुत धीमी। यदि साधारणत· नाड़ी एक मिनटमें ६० से ९० बार तक चलती हो तब तो किसी प्रकारकी चिन्ताकी बात नहीं है, पर यदि वह इससे कम या अधिक चले और उपवास करनेवाला किसी योग्य डाक्टरकी देखरेखमे न रहकर स्वयं ही उपवास करता हो तो आवश्यकता पडने पर वह अपना उपवास छोड भी सकता है।

उपवास-कालमें यह विश्वास मनसे एकदम निकाल देना चाहिए कि बिना भोजनके मनुष्यका शरीर चल ही नहीं सकता। इस विश्वासके कारण कभी कभी बहुत हानि हो जाती है। उपवास-कालमे बहुधा लोगोंका जी घुटने लगता है और उन्हें बेहोशी आने लगती है। बहुतसे अशोंमें इसका मुख्य कारण उक्त मिथ्या विश्वास ही हुआ करता है। दुर्बल हृदयके लोगो पर इस विश्वासका और भी बुरा प्रभाव पडता है। उस बुरे प्रभावसे बचनेके लिए उपवास-कालमें इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि मन सब प्रकारसे सन्तुष्ट और शान्त रहे, उसमे किसी प्रकारकी उद्विग्नता या चिन्ता न हो। उपवासकालमें जिस रोगीका मन इस स्थितिमें रहता है, उसे उपवाससे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है और वह बहुत शीघ्र नीरोग हो जाता है।

उपवासकालमें यद्यपि शरीर बहुत दुर्बल और कृश हो जाता है, तथापि इससे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। बहुधा यह दुर्बलता उन्हीं विषोंके कारण होती है जो रोगीके रक्तमे मिले हुए होते है। यदि कसरत करने और खूब घूमने, फिरने या टलहनेसे भी यह दुर्बलता कम न हो और रोगीके हरदम

बिस्तर पर पड़े रहनेकी नौबत आ जाय, तो उस दशामें भी उपवास छोड़ देना ही सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि वास्तवमें वह निर्बलता कोई विशेष या भारी हानि नहीं पहुँचा सकती तो भी यदि रोगी किसी योग्य डाक्टरकी देख रेखमें न हो तो उपवास छोड़ देना ही बुद्धिमत्ता है।

डा० मैकफेडनके चिकित्सालयमें बहुतसे ऐसे रोगी भी पहुँच चुके हैं, जिनकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी। उन लोगोंने केवल अपनी इच्छाके कारण ही आवश्यकतासे अधिक दिनोंतक उपवास किया था। उनमेंसे अधिकांशको उपवाससे लाभके बदले हानि ही हुई थी। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उपवासकालमें पहले शरीरके अनावश्यक और फालतू पदार्थ हमारी जठराग्निकी नजर होते हैं और तदुपरान्त शरीरके आवश्यक पदार्थोंकी बारी आती है। इसलिए कदापि वह दशा न आने देनी चाहिए जिसमें आवश्यक पदार्थोंका नाश आरम्भ होता है। इसकी एक बहुत अच्छी पहचान भी है। जब तक मनुष्य मीलोंके चक्कर लगाने और खूब कसरत करनेके योग्य रहे—उसके शरीरका बल बराबर बना रहे—तब तक उपवास जारी रखना चाहिए, पर जब शरीरका बल घटने लगे तब तुरन्त उपवास छोड़ देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि बहुत लम्बे उपवासके बाद भोजन आरम्भ करनेमें भी बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती है। उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो, उसके छोड़ने पर भोजन भी उतनी ही अल्प मात्रामें होना चाहिए। उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए, इस विषयमें अधिक बातें आगे चलकर कही जायँगी। पिछले पृष्ठोंमें पाठक मिस हालका विवरण पढ़ चुके होंगे जिन्होंने चालीस दिनोंतक उपवास करके रुग्णतासे छुटकारा पाया था। मिस हालने उपवास छोड़नेके बाद अपना भोजन आधे सन्तरेसे आरम्भ किया था। पर उनका पक्वाशय उतना भोजन पचानेमें भी समर्थ न था, इसलिए उन्हें कुछ समय तक कष्ट उठाना पड़ा था। मि० मैकफेडनने उनकी दशा देखकर यह सिद्धान्त निकाला था कि उन्हें अथवा उनके समान लम्बे उपवास करनेवाले दूसरे रोगियोंको—जिनका पक्वाशय बहुत अच्छी दशामें न हो—आधे सन्तरेसे नहीं बल्कि आधे सन्तरेके रस मात्रसे भोजन आरम्भ करना चाहिए। उचित समय तक उपवास करनेसे कभी कोई हानि नहीं होती, हानि उसी

समय होती है जब उपवास छोड़नेके समय भोजनका उचित ध्यान न रक्खा जाय और उसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम हो। उपवास-कालमे यदि भयका कोई चिह्न हो तो एलोपैथिक या होमियोपथिक चिकित्सा करनेवाले डाक्टरोंसे सलाह लेनेकी अपेक्षा स्वयं अपनी वुद्धिसे काम लेना ही अधिक उत्तम है। स्वयं हमारी प्रकृति ही हमारी सवसे वडी रक्षक और शुभचिन्तक है। वहुधा वही हमें समय पर हमारा कर्तव्य वतलाती रहेगी। भयके अधिक चिह्न उसी दशामे उत्पन्न होंगे जव कि उपवास अधिक दिनोंतक किया जायगा। पर साधारणत कभी अधिक दिनोंका उपवास न करना चाहिए। सव प्रकारके भयके चिह्नोंसे वचनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य उसका आरम्भ वहुत थोडेसे करे। यदि मनुष्यका शरीर साधारणत स्वस्थ रहता हो पर उसके अन्दर कोई रोग हो, तो उसे उचित है कि पहले महीने वह एक या दो दिन तक उपवास करे। तीन चार महीने तक इसी प्रकार उपवास करनेके उपरान्त वह तीन चार दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार साल दो साल वाद वह आठ दस दिन तकका उपवास करनेके योग्य हो जायगा। उस दशामें किसी प्रकारके भयके चिह्नोके उत्पन्न होनेका कोई कारण न रह जायगा। यह तो हुई साधारणत स्वस्थ और नीरोग मनुष्योंकी वात। पर यदि मनुष्यको अचानक कोई भारी रोग आ घेरे, तो केवल उस रोगके कारण ही वह आठ दस दिनोंतक निराहार रह सकता है और उसके शरीरमें भयका कोई चिह्न दिखलाई नहीं दे सकता।

अच्छे उपवासका लक्षण यह है कि मनुष्यका मन वहुत ही स्वच्छ और सन्तुष्ट रहे, उसमें किसी प्रकारकी घवराहट या वेचैनी आदि न हो। यदि मनमे प्रसन्नताके वदले घवराहट या वेचैनी हो और इच्छा-शक्ति निर्वल पड़ती जाय, तो उपवासकालमें वहुत सावधानीसे रहना चाहिए और यदि उस प्रकार रह सकना असम्भव हो और किसी योग्य उपवास-चिकित्सककी सम्मति भी न मिल सकती हो तो उपवास छोड देना ही उत्तम है।

नींद और प्यास।

जो लोग उपवास करते हैं उन्हें प्राय नींद बहुत कम आती है। बहुधा ऐसा जान पडता है कि सारे शरीरके ज्ञान-तन्तुओंमें तनाव आ गया है या खींचातानी हो रही है । मनुष्यको निद्रा उसी समय आती है जब कि उसका सारा शरीर सब प्रकारके तनावसे छुटकारा पा जाय और आराममे हो। पर ज्ञान-तन्तुओंके व्यतिक्रमके कारण शरीरको आराम नहीं मिलता और फलतः मनुष्यको नींद भी नहीं आती। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको उचित है कि वह जल पीए। जल ठढा हो या गरम, यह पीनेवालेकी इच्छा और मुँहके स्वाद पर निर्भर है। यदि जल पीनेमे कुछ लाभ न हो तो उचित और आवश्यक जान पडनेपर गरम पानीसे नहा लेना चाहिए। नहानेसे उस समयके शारीरिक कष्ट दूर हो जायँगे और शरीरको आराम मिलनेके कारण नींद आवेगी। यदि नहानेका मौका न हो, तो निचोडे हुए गीले अँगोछेकी तहें लगाकर और उसे किसी तौलिये आदिमे इस प्रकार लपेटकर कि उसका पानी बिछौने पर न पडे, छाती, पेट और जाँघ पर रखना या फेरना चाहिए । उपवासकालमें नींद न आनेका मुख्य कारण यह है कि उस समय शरीरमे रक्तका सचार बहुत ही कम होता है। कभी कभी पैर बिलकुल ठडे हो जाते हैं और भारी कपडोंसे ढकने पर भी उनमे आवश्यक गरमी नहीं आती। उससमय पैरों पर या तो खूब गरम कपडा या कोई भारी तकिया रख लेना चाहिए । यदि उससे भी अभीष्टसिद्धि न हो तो बोतलमें गरम पानी रख कर और उसे कपडेसे लपेट कर पैरो पर फेरना चाहिए; इससे तुरन्त पैरोंमे गरमी आ जायगी। उस समय पैरोंमे खून खिच आवेगा और तुरन्त नींद भी आने लगेगी। जो लोग उपवास न करते हों वे भी नींद न आने और पैर ठडे हो जानेके समय यह उपाय कर सकते हैं। नींद न आनेके कारण बहुतसे तडफडानेवाले रोगी इस उपायसे थोडी ही देरमें गहरी नींदमे सो गये हैं।

इस अवसर पर यह बात भी भूल न जानी चाहिए कि उपवास-कालमें बहुत अधिक नींद आनेकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। उपवास-कालमें शारीरिक शक्तियोंको किसी प्रकारका भोजन नहीं पचाना पडता और न कोई परिश्रम ही

करना पडता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे शिथिल नहीं होतीं। अधिक निद्राकी आवश्यकता उसी समय होती है, जब कि सब शारीरिक शक्तियाँ शिथिल हों। साधारणत जिन लोगोको सात या आठ घटो तक सोनेकी आवश्यकता होती हो, उपवास-कालमे उनके लिए केवल चारसे छ घटे तककी निद्रा ही यथेष्ट होती है। यदि उपवास-कालमे किसीको नियमित रूपसे कुछ ही कम नींद आवे तो उसे नींद बढानेके लिए किसी प्रकारका प्रयत्न न करना चाहिए। उपवासकालमे जल अधिक परिमाणमे पीना चाहिए। यदि उपवास करनेवाला स्वच्छ और यथेष्ट जल पीए तो वह उपवासकालमें होनेवाली बहुतसी कठिनाइयोंसे बचा रहेगा। अधिक और उत्तम जल पीनेसे उसके शरीरके भीतरी भाग मानों अच्छी तरहसे धुलते रहेंगे और उनमें जो कुछ दूषित पदार्थ होंगे वे सब बाहर निकलते रहेंगे। जिसकी जीभ खराब हो जाय, मुँहका स्वाद बिगड जाय, या साँसमे बहुत बदबू आती हो उसके लिए तो अधिक पानी पीनेकी और भी विशेष आवश्यकता है। जिस मनुष्यके पाचनक्रिया करनेवाले अवयवोको किसी प्रकारका भोजन ग्रहण और पाचन न करना पड़ता हो और जिसका शरीर बहुतसे विषो और दूषित पदार्थोंसे भरा हो उसे अवश्य ही अधिक जल पीना चाहिए, क्योंकि बहुधा विष और दूषित पदार्थ आकर पेटमे ही इकट्ठे होते हैं। अधिक पानी पीनेसे वे सब विकार सहजमें ही शरीरके बाहर निकल जाते हैं। यदि कभी कभी पानीमे दो चार बूँद नीबूका रस छोड दिया जाय तो और भी अधिक लाभ होता है। शरीरके भीतरी अवयवो पर विकारोके कारण जो पपड़ियाँसी जम जाती हैं, नीबूके रससे वे सहजमें ही अपना स्थान छोड़ देती हैं और जल उन्हें बाहर निकालनेमें सहायक होता है। इसके अतिरिक्त जल पीनेसे एक और लाभ यह भी होता है कि उपवास करनेवालेका शरीर तौलमें बहुत अधिक नहीं घटता। यदि हर एक घटेके बाद एक गिलास स्वच्छ जल पी लिया जाय तो बहुत ही उत्तम है। यदि इतना पानी न पीया जासके तो कमसे कम बेचैनी होने या भूख मालूम पड़ने पर तो अवश्य ही ठढा और साफ जल पी लेना चाहिए। इससे उदर और शरीरको बहुत कुछ शान्ति मिलेगी और उपवास-काल सहजमे ही बिताया जा सकेगा। इसलिए उपवास करनेवालेको उचित है कि वह जहाँ तक अधिक पानी पी सके वहाँ तक पीए।

आहार-कालमें भी बहुतसे डाक्टर सम्मति दिया करते हैं कि भोजनके साथ कभी जल न पीना चाहिए। पर यह बात ठीक नहीं है। साधारणत सब लोगोंको और विशेषत उपवास कर चुकनेवाले लोगोंको भोजनके साथ और उसके उपरान्त बीचबीचमें भी यथेष्ट जलका व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँके वैद्यकशास्त्रमें जलको अमृत कहा है और उसके विषयमें यह बतलाया गया है कि उससे कभी किसी दशामें कोई हानि नहीं होती। बहुतसे डाक्टर, वैद्य और हकीम आदि ज्वर-कालमें अपने रोगियोंको पानी नहीं पीने देते। पर यह बडी भूल है। बहुधा बहुत अधिक पानीसे और कुछ विशेष दशाओंमें थोडे पानीसे बहुत ही लाभ होता है। पर पानी न पीना सदा हानिकारक ही होता है। इसलिए प्रत्येक रोगी और नीरोगी, अशक्त और सशक्त सबको स्वच्छ, ताजे और मीठे जलका खूब सेवन करना चाहिए। अन्नकी अपेक्षा जलमें कहीं अधिक सजीविनी शक्ति होती है। जल सदा शरीरको लाभ ही पहुँचाता है, हानि नहीं।

जलके अतिरिक्त एक और पदार्थ है, उपवास कालमें जिसका व्यवहार करनेसे बहुत कुछ लाभ होता है। वह पदार्थ है शुद्ध और साफ की हुई रेत। यह रेत थोडी थोडी मात्रामें उपवास-कालमें फाँकी जाती है। शायद हमारे पाठक रेत फाँकनेका नाम सुन कर हँस पडेंगे और यह बात है भी बहुतसे अंशोंमें हँसी आने योग्य ही, पर वास्तवमें रेत फाँकनेका शरीर पर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है। रेत फाँकनेके गुणोंकी जानकारी पहले पहल बोस्टन नगरके प्रो० विलियम विंडसरने प्राप्त की थी। उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला था कि मनुष्यके अतिरिक्त प्राय. सभी जानवर अपने भोजनमें थोड़ी बहुत रेत सदा और अवश्य मिला लेते है। उस रेतसे उनकी भोजनवाहिनी नलिका सदा बहुत साफ और स्वच्छ रहती है और उसके कारण भोजन गुठलोंमें बँधकर कब्जियत नहीं उत्पन्न कर सकता। स्वय डाक्टर मैकफेडनने जब यह विलक्षण सिद्धान्त सुना तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ था, क्योंकि रेतको कोई मनुष्यका स्वाभाविक खाद्य नहीं मान सकता। पर जब डाक्टर महाशयने लगातार तीन वर्षों तक हजारों रोगियोंको उसका व्यवहार कराया तब उसके गुणोंके सम्बन्धमें उनका पहला आश्चर्य और भी बढ गया। हजारोंमेंसे एक रोगी भी ऐसा न निकला जिसे रेतके व्यवहारसे किसी प्रकारकी हानि पहुँची हो।

फाँकनेके लिए रेत ऐसी होनी चाहिए जिसके दाने गोल और खुरदुरे हो, जो पानीमे न घुल सके और जो वहुत साफ हो। जिस रेतके दाने नुकीले या धार-दार हों उसका व्यवहार नहीं करना चाहिए, क्योकि उससे शरीरके भीतरी कोमल भागोंपर रगड लगती है। इसके अतिरिक्त वैसी रेतके दाने परस्पर एक दूसरोके साथ मिल जाते है। पर गोल दाने परस्पर एक दूसरेसे अलग रहते हैं, और वे ही हमारी कब्जियत दूर कर सकते हैं। उनसे विना किसी प्रकारकी कठिनाई या कष्टके हमारी अँतडियाँ आदि विलकुल साफ और मल-रहित हो जाती है। इस स्थान पर कदाचित् यह वतलानेकी कोई आवश्यकता न होगी कि फाँकनेके लिए रेत वहुत ही साफ होनी चाहिए। सफेद रेतकी अपेक्षा भूरे काले रगकी रेत वहुत अच्छी होती है। यदि रेत साफ न हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। खूव खौलते हुए गरम पानीमे उवालनेसे रेत साफ हो जाती है। साधारणत दिन भरमें एकसे तीन चम्मच तक रेत फॉकी जा सकती है। रेत फाँकनेके उपरान्त ऊपरसे वहुतसा स्वच्छ जल पीना चाहिए। उपवास न करनेवाले लोगोंको भी यदि वहुत कब्जियत हो तो वे थोडीसी रेत फाँककर और ऊपरसे स्वच्छ जल पीकर अपनी कब्जियत दूर कर सकते हैं। कब्जियत दूर करनेका यह वहुत ही सीधा और सर्वोत्तम उपाय है।

उपवासकालमें एनिमा।

एनिमा उस क्रियाका नाम है जिससे गुदाके मार्गसे अँताडियों तथा पेटके दूसरे भीतरी भाग धोये जाते हैं। एलोपैथिक चिकित्सक वहुधा इसका व्यवहार करते हैं और कुछ विशेप प्रकारकी पिचकारियोंसे ओषधि-मिश्रित जल गुदाद्वारा पेटमें पहुँचाते हैं। इन पिचकारियोंको भी एनिमा कहते हैं। अँगरेजी दवा वेचनेवालोंके यहाँ तीन चार रुपयेमें एनिमा मिलता है। इस क्रियासे पेट और पेड़ू आदिमे फँसा हुआ सारा दूषित और गन्दा मल वाहर निकल जाता है और रोगीकी दशा वहुत सुधर जाती है। कब्जियत और अँताड़ियोकी दूसरी वीमारियोंके समय प्राय इसका व्यवहार होता है। हम पहले कह आये है कि शरीरको नीरोग और शुद्ध करनेके लिए जहाँ तक हो सके प्राकृतिक नियमोसे काम लेना चाहिए। अप्राकृतिक नियमोंसे काम लेनेका

परिणाम बहुत बुरा होता है। एनिमाका विधान बतलानेके कारण हम पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि हम भी एक अप्राकृतिक उपाय बतला रहे हैं। पर इस सम्बन्धमें केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि जुलाबकी गोलियों या रेंडीके तेल आदिकी तरह एनिमाका कोई ऐसा परिणाम नहीं होता जो शरीरमें अधिक समय तक स्थायी रूपसे रह कर हमें हानि पहुँचावे। ऐसी दशामें उसे विधेय बतलाते हुए उसकी आवश्यकता और लाभोंका वर्णन कर देना भी यहाँ उचित जान पड़ता है।

किसी मनुष्यके नीरोग होनेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उसे पैखाना साफ आवे। यदि उसे किसी प्रकारकी कब्जियत हो तो यही माना जायगा कि अभी उसके शरीरमें कुछ रोग बाकी है। एनिमाके व्यवहारसे मनुष्यकी कब्जियत बहुत ही सरलतापूर्वक—बिना उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये—दूर हो जाती है और उसका मल-मार्ग बहुत ही सहजमें साफ हो जाता है। हमारी आँतोंमें यह गुण है कि वे सदा फैलती और सिकुड़ती रहती हैं। भोजन पचनेके उपरान्त जो अनावश्यक और दूषित पदार्थ बच रहता है वह आँतोंकी इसी फैलने और सिकुड़नेवाली क्रियाके कारण मल-रूपमें हमारे शरीरके बाहर निकलता है। जिस समय मनुष्य उपवास आरम्भ करता है, उस समय भोजनके अभावके कारण आँतोंका सिकुड़ना और फैलना बन्द हो जाता है, जिसके कारण मल हमारे शरीरसे बाहर नहीं निकल सकता। उस समय आँतोंके ऊपरका मल ऊपर ही रह जाता है और इसी मलको सरलतापूर्वक बाहर निकालनेके लिए एनिमाका उप-योग लाभदायक होता है।

इसके अतिरिक्त एनिमासे और भी कई लाभ होते हैं। हमारे शरीरमें हरदम जो तरह तरहके विष और दूषित पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, उपवासकालमें भी उनकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। यदि वे विष और दूषित पदार्थ बाहर न निकाले जायँ तो उनका दुष्परिणाम सारे शरीर पर और विशेषतः रोगग्रस्त अंगोंपर पड़ता है। एनिमासे उन विषोंके बाहर निकालनेमें भी बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार अधिक जल पीनेसे तो शरीरका ऊपरी भाग स्वच्छ होता रहता है और एनिमा लेनेसे पेट, पेड़ू और आँतों आदिकी सफाई होती रहती है। अधिक जल पीने और एनिमा लेनेवाले उपवासकारियोंकी साँस बहुत साफ हो

जाती है और उनकी जीभ पर जमी हुई पपडी छूट जाती है और उनकी जीभकी रंगत ठीक वैसी ही गुलावी हो जाती है, जैसी किसी छोटे नीरोग वालककी जीभकी होती है। सॉसमें किसी प्रकारकी वदवू नहीं रह जाती और मुँहका स्वाद वहुत अच्छा हो जाता है।

कुछ ज्ञातव्य बातें।

बहुत सम्भव है कि कुछ लोग उपवास करनेको वडा भारी युद्ध समझें और उसके लिए तरह तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेका प्रयत्न करें। ऐसे लोगोंसे हमारा निवेदन है कि उपवासके लिए पहलेसे कभी किसी प्रकारकी तैयारीकी आवश्यकता नहीं होती। न तो वहुत पहलेसे उपवासके उद्देश्यसे ही लम्वी चौड़ी कसरतें करनेकी आवश्यकता है और न खाने पीनेमें कोई वडा परहेज करनेकी ही। उपवास एक वहुत ही सीधी सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगने पर जल पीनेके लिए किसी प्रकारके सोचविचारकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार रोगग्रस्त होनेपर उपवास करनेके लिए भी किसी प्रकारका सोच विचार न होना चाहिए। उपवासके आरम्भमें केवल मनको शान्त और अविकल रखनेकी आवश्यकता होती है, जहाँ मनकी उपवाससम्वन्धी उद्विग्नताका नाश हुआ वहाँ उपवासमें फिर और किसी प्रकारकी अडचन या कठिनता नहीं रह जाती।

दूसरी वात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास-कालमें किसी प्रकारकी ओषधि आदिका कदापि सेवन न करना चाहिए। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रियाका व्यवहार नहीं होना चाहिए। सन् १९०३ में लकवेके एक रोगीने चालीस दिनोंका उपवास किया था। उपवासके अन्तमे उसे शरीरके एक ऐसे अगमे कुछ पीडा जान पडी जिसमें उसे पहले कभी कोई पीडा नहीं हुई थी। मंगलके दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवारके दिन उसकी मृत्यु हो गई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उपवास छोडनेके दूसरे ही दिन वह एक डाक्टरके पास चला गया था, जिसने उसे औषधके अतिरिक्त कुछ दूध और फलोका रस भी दिया था और उसकी

मृत्यु इसी कारणसे हुई थी। उपवास करनेवालोंको इस वातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उपवास-कालमे और उसके उपरान्त शरीरकी हालत वहुत ही नाजुक हो जाती है और उस दशामें औषधो आदिका शरीर पर वहुत ही भयक्र परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगोंकी चिकित्सा औषध आदिसे करते हैं, वहुधा औषध छोड देने पर उनके रोग फिरसे उन्हें कष्ट देने लगते हैं। पर उपवासकी सहायतासे नीरोग हो जाने पर रोगके फिरसे उभड आनेकी कभी कोई सम्भावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों वाद यदि वह फिर औषधोंका सेवन आरम्भ कर दे तो अवश्य ही वह फिरसे रोगी हो सक्ता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल अपना भोजन घटा दें तो क्या उससे हमें लाभ न होगा ? इसका उत्तर यही है कि वहुत ही छोटे और साधारण रोगोंमें तो थोडे भोजनसे अवश्य लाभ होता है, पर तीव्र और भयकर रोगोंके समय उससे कोई लाभ नहीं होता। वात यह है कि रोगी होनेपर हम जो कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीरकी अपेक्षा, रोगका ही अधिक पोषण होता है। भोजन करके रोगको पालनेकी अपेक्षा भोजन छोडकर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमत्ता है। वहुतसे लोगोंने वहुत दिनों तक थोडा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है कि उसका कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी वात यह है कि उपवास करनेकी अपेक्षा थोडा भोजन करके रहना वहुत कठिन और कष्टप्रद है। उपवासमें तो केवल पहले दो तीन दिनोंतक ही कष्ट होता है और इसके वाद जव भूख मारी जाती है तव मनुष्य वडे सुखपूर्वक रहता है। पर थोडा भोजन करनेवालोका कष्ट सदा वना रहता है। थोडा भोजन करनेसे भूख वढती है और तव मनुष्यको विवश होकर अधिक भोजन करना ही पड़ता है। अप्टन सिंक्लेअरने एक वार केवल थोडेसे फल खाकर ही कुछ दिनों तक रहना निश्चय किया था। पर उस कालमे उन्हे उतनी अधिक दुर्वलता जान पडने लगी, जितनी उपवास-कालमें कभी नहीं जान पडती थी। इसलिए थोडा भोजन करके रहना कष्टदायक भी है और व्यर्थ भी। जो लोग एकदम उपवास न कर सकते हो वे पहले महीनेमें एक या दो दिनका ही उपवास करें। और इसी प्रकार उपवासका अभ्यास वढाते जायँ तो अवश्य ही कुछ फायदेमें रह सकते हैं।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि मनुष्यको उपवासकालमें अपना नियमित काम धन्धा करना चाहिए या नहीं। जिस प्रकार और बातोंमें कुछ शर्तें होती हैं उसी प्रकार इसमे भी कुछ खास शर्तें हैं। जिस मनुष्यकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो वह यदि अधिक समयतक या कठिन और भारी काम करेगा तो अवश्य ही उसके शरीर पर उसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। तथापि ऐसे मनुष्यको कुछ टहलना फिरना या थोड़ा व्यायाम अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य बिछौने परसे भी न उठ सकता हो वह भी बिछौने पर पड़ा ही अपने शरीरको इधर उधर हिला डुला सकता और इस प्रकार व्यायामसे होनेवाला थोड़ाबहुत लाभ उठा सकता है; पर जिस मनुष्यके शरीरमे थोड़ी बहुत शक्ति हो उसके लिए यथासाध्य अपने काम काममे लगा रहना ही अधिक उत्तम है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि प्रत्येक दशामें मनकी स्थितिका शरीर पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस मनुष्यका मन काममें लगा रहेगा उसका शरीर बहुधा ठीक दशामें ही रहेगा। मनको इधर उधर भटकानेसे बचाने और कृत्रिम भूखके फेरमे न पड़नेके वास्ते काम धन्धेसे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। ठाली बैठे रहनेवाले लोग कृत्रिम भूखके फन्देमे फँसकर अपना उपवास छोड़ भी सकते हैं। बहुत ही प्रबल इच्छा-शक्तिवाले लोगोंके लिए भी काम धन्धेमें लगे रहना बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है। उपवासकालमें जहाँतक हो सके हाथों पैरो और मनको किसी न किसी काममें लगाये रखना चाहिए। इस अवसरपर यह बतला देना भी आवश्यक है कि गरमीके दिनोंमे उपवास करना बहुत कठिन होता है। उस समय मनुष्य बहुत ही निर्बल हो जाता है। जाड़ेमें उपवास तो अवश्य अच्छी तरह हो सकता है, पर उन दिनों कठिनता यह होती है कि मनुष्यको भूख अधिक लगने लगती है। पर यदि आरोग्यपर पड़नेवाले प्रभावके विचारसे देखा जाय तो जाड़ेके दिन ही अधिक उत्तम ठहरते हैं, क्योंकि अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गरमीमें तीन दिनोंतक उपवास करनेसे शरीरको जितना लाभ पहुँचता है, जाड़ेमें उतना ही लाभ केवल दो दिनोंमे होता है।

बड़ा और छोटा उपवास ।

उपवास दो प्रकारके होते हैं। एक उपवास तो बहुत दिनोंका और दूसरा उपवास थोड़े दिनोंका होता है। जो लोग बहुत दिनोंके उपवासको उत्तम बतलाते हैं वे भी उसकी अवधि निश्चित नहीं करते,—वे यह नहीं बतलाते कि अधिकसे अधिक कितने दिनों तक उपवास किया जा सकता है। उनका यह कथन है कि उपवासकी अवधि स्वयं प्रकृति निश्चित करती है। हमारी प्रकृति हमें यह बतला देती है कि हम एक सप्ताह तक निराहार रहें या एक मास तक। उनका यह भी मत है कि जबतक प्राकृतिक और वास्तविक भूख न लगे तबतक भोजन न करना चाहिए। भोजनकी वास्तविक रुचि या असली भूखकी निशानी साधारण और अभ्यास-जन्य रुचिसे कुछ भिन्न प्रकारकी होती है और जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशके सामने और सब प्रकारके प्रकाश एकदम तुच्छ जान पड़ते हैं उसी प्रकार वास्तविक क्षुधाके सामने कृत्रिम या और किसी प्रकारकी क्षुधा बिलकुल ही तुच्छ बोध होने लगती है। उपवास करनेवालेको वास्तविक भूख और खानेकी इच्छा-मात्रका भेद तुरन्त मालूम हो जाता है। इस सिद्धान्तकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप वे लोग उपस्थित किये जा सकते हैं जिन्होंने अस्सी और नब्बे दिनोंतकके उपवास किये हैं।

साधारण रोगोंके समय यही बात ठीक जान पड़ती है कि जबतक रोगका जोर बिलकुल नष्ट न हो जाय और वास्तविक भूख लगे तबतक उपवास बराबर जारी रखना चाहिए। जिन लोगोंकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो अथवा जो अपनी मानसिक या शारीरिक दुर्बलताके कारण अधिक दिनोंतक उपवास न कर सकते हों वे बड़े बड़े उपवास न करके छोटे छोटे उपवासोंसे ही बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि छोटे उपवास करके बिलकुल नीरोग और स्वस्थ होनेमें बहुत समय लगता है। इसके अतिरिक्त उसमें अधिक समयतक विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता होती है। बड़े और छोटे उपवासके गुण और लाभ अपूटन सिंक्लेअरने बड़ी ही उत्तमतासे बतलाये हैं, इस अवसर पर उन्हींका सारांश दे देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। आप कहते हैं,—

"बहुधा लोग प्रश्न किया करते हैं कि कितने दिनोंतक उपवास करना चाहिए और यह किस प्रकार मालूम हो सकता है कि अब उपवास छोड़नेका

समय आ गया। मैं एक उपवास भी पूरा नहीं कर सका। मैंने दो वार वारह वारह दिनोके उपवास किये हैं। दोंनों वार मुझे उपवास छोड़ना पड़ा था इसका कारण यह था कि मैं वारह दिनोंमें ही वहुत दुर्वल हो गया था और मेरी वहुत इच्छा होती थी कि मेरा शरीर वहुत जल्दी फिरसे पहलेकी भाँति सवल हो जाय। यद्यपि उन वारह दिनोंतक मुझे वास्तविक भूख नहीं लगी थी, तो भी कई डाक्टरोंने मुझसे कहा था कि इन वारह दिनोंके उपवाससे ही तुम्हें वहुत कुछ लाभ पहुँच चुका है। और वात भी वास्तवमे कुछ ऐसी ही थी। मेरी समझमें पाचन-शक्तिके मन्द पडने, आँतोंमें मल जमा होने, सिरमे दरद रहने, कब्जियत होने अथवा इसी प्रकारकी और दूसरी साधारण और छोटी मोटी शिकायतोंके लिए दस वारह दिनोंका उपवास वहुत ठीक होता है। पर जिन लोगोको नासूर, गरमी, ववासीर, गठिया आदि भारी और भयंकर रोग हों, उन्हें अधिक दिनोंतक उपवास करना चाहिए।

" यदि कोई मनुष्य एक वार उपवास आरम्भ करे और उपवास-कालमें उसे किसी प्रकारकी कठिनता या कष्ट वोध न हो तो उसे यथा-साध्य कुछ अधिक समय तक उपवास अवश्य जारी रखना चाहिए। लोगोंको केवल अपनी सामर्थ्य दिखलाने, अपना कुतूहल शान्त करने या दिल्लगी देखनेके लिए कभी वड़ा उपवास न करना चाहिए। वार वार छोटे या वडे उपवास करना भी ठीक नहीं। यदि किसीको कई वार वरावर उपवास करनेकी आवश्यकता जान पडे तो उसे समझ लेना चाहिए कि किसी वहुत वुरी आदत या क्रियाके कारण उसका शरीरम-संगठन विल्कुल विगड गया है। ऐसी दशामें उसे सव प्रकारके अनुचित कार्य्यों और अभ्यासोको सदाके लिए छोड़कर तव उपवास करना चाहिए। जो लोग दुवले पतले हों उन्हें अधिक दिनों तक कदापि उपवास न करना चाहिए। अधिक दिनों तक उपवास करनेकी शक्तिका आधार मनुष्यके शरीरकी मोटाई है। जो मनुष्य जितना ही अधिक मोटा होगा और जिसके शरीरमें जितना ही अधिक फालतू द्रव्य सगृहीत होगा वह उतना ही लंवा उपवास कर सकेगा। जव तक मनुष्यको स्वय यह निश्चय न हो जाय कि मुझे केवल वड़े उपवाससे ही लाभ होगा, तव तक उसे कभी अधिक दिनों तक उपावस न करना चाहिए।

जिसे इस विषयमे तनिक भी शका हो उसे सदा थोडे दिनोंका उपवास न करना ही उचित है। यदि थोडे दिनोंके उपवासका अनुभव प्राप्त करनेके उपरान्त भविष्यमें उसे किसी प्रकारका भय या सङ्कट न दिखाई पड़े तो वह उसी उपवासको कुछ अधिक दिनों तक जारी रख सकता है, अथवा आवश्यकता पड़ने पर एक वार उपवास छोडकर दूसरी वार अधिक दिनोंका उपवास कर सकता है। "

छोटे बच्चोंके लिए उपवास।

छोटे बच्चोको उपवाससे इतने अधिक लाभ होते है जितने वयस्क पुरुषोंको नहीं होते। दुधमुँहे और पालनेमें झूलनेवाले बच्चोंसे लेकर १४-१५ वर्ष तककी अवस्थाके बच्चेंकि लिए उपवास बहुत ही लाभदायक होता है। बालकोंको बहुधा छोटी मोटी बीमारियाँ हो जाया करती हैं। यदि माता-पितामें इतना साहस और विश्वास हो कि बालकको किसी प्रकारका छोटा मोटा रोग होते ही वे उसका भोजन आदि बन्द कर दें तो वे रोग देखते ही देखते आश्चर्य्यजनक रूपसे दूर हो जाँयगे। जुकाम और खाँसीसे लेकर बडे बडे भयङ्कर ज्वरोतक सब रोग इस प्रकार बहुत ही सहजमें दूर किये जा सकते है।

इस अवसर पर बडे उपवासोंके सम्बन्धमे यह बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पडता है कि **चार छह दिनसे अधिक लम्बा उपवास बिना किसी अच्छे चिकित्सक और विशेषत उपवास-चिकित्सककी सम्मति और देखरेखके कदापि न करना चाहिए।** क्योंकि कभी कभी उसके सम्बन्धके पूर्ण नियम आदि न जानने अथवा उनके पालन न करनेसे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है। जो लोग अधिक लम्बा उपवास करना चाहते हों उन्हे उचित है कि वे किसी उपवास-चिकित्सककी सम्मति लेकर अथवा अपने ही नगरके किसी योग्य चिकित्सककी देखरेखमें रहकर उपवास करें।

बालकोका शारीरिक सगठन ही इतना उत्तम और आरोग्य-वर्द्धक होता है कि उन्हें कभी किसी प्रकारकी ओषधिकी आवश्यकता ही नहीं होती। ज्योंही किसी बालकको कोई रोग हो त्योंही उसका भोजन बन्द कर दो, उसे केवल स्वच्छ जल पीनेके लिए दो और उसे उसकी प्रकृति पर छोड दो और तब देखो कि

वह कितनी जल्दी नीरोग और स्वस्थ हो जाता है। इस सम्बन्धमें तनिक भी भय या चिन्ताका कभी कोई कारण नहीं है। क्योंकि इससे बढकर आश्चर्य्य-जनक और रामवाण चिकित्सा हो ही नहीं सकती। जो माता पिता एक दो बार भी इस चिकित्साकी परीक्षा करेंगे वे आगे चलकर अपनी पहली मूर्खता और दूसरोंके व्यर्थ भय आदि पर हँसने लगेंगे।

पर यदि किसी वालकके रोगी होने पर महीनों तरह तरहकी ओषधियाँ देकर उसका स्वास्थ्य विलकुल विगाड दिया जायगा और उसे मृत्यु-मुख तक पहुँचा दिया जायगा, तो उसको वचा लेनेकी शक्ति उपवासमें न दिखलाई पडेगी। उस दशामें अपनी मूर्खताका दोष उपवासके मत्थे न मढ़ना चाहिए। हाँ, यदि दूषित उपायोसे वालकका शरीर विगाडा न गया हो, उसके शरीरमे तरह तरहके विष न भरे गये हो तो अवश्य ही उपवासका चमत्कार देखा जा सकता है। सबसे पहली वात तो यह है कि स्वय वालकके शरीरमें कभी किसी प्रकारका रोग नहीं होता। या तो वह रोग माता पिताके कुपथ्य और दोषो आदिके कारण हो सकता है और या तरह तरहकी ओषधियो आदिकी सहायतासे उसमे आरोपित किया जाता है। जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित भले आदमीकी प्रवृत्ति चोर डाकू या खूनी वननेकी ओर नहीं हो सकती, उसी प्रकार किसी वालकके शरीरकी प्रवृत्ति रोगी होनेकी ओर नहीं हो सकती। वहुतसी अवस्थाओंमें तो यहाँ तक देखा गया है कि यदि वालक कोई रोग साथ लेकर उत्पन्न हो, तो आगे चलकर उसका वाल-शरीर ही उस रोगको नष्ट कर देता है। पर दुर्भाग्यवश हम लोगोको यह मिथ्या भ्रम हो जाता है कि वालकको सदा भोजनकी आवश्यकता वनी रहती है। रोगी होनेके समय उसे औषध अवश्य देनी चाहिए, यदि उसे नींद न आती हो तो थोडी अफीम या और कोई नशीली चीज खिला देना चाहिए, आदि आदि। और इसी भ्रमके कारण 'हम लोग जान वूझकर वालकोंके शरीरको रोगका घर वना देते हैं।

प्रकृति हमे यह वात वतलाती है कि किसी वालकको जन्म लेनेके उपरान्त कमसे कम तीन दिन तक किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता नहीं होती। साधारणत प्रत्येक दाई और माता यह वात अच्छी तरह जानती है कि वालकको जन्म लेनेके तीसरे दिन दूध पिलाया जाता है। वह दूध भी वहुत ही

थोड़ी मात्रामे होता है। पर उसके बाद ही माता या दाई उसे थोड़ी थोड़ी देरके बाद जबरदस्ती अथवा जब जब वह रोता है तब तब उसे दूध पिलाती है। इस प्रकार बाल्यावस्थासे ही बालककी पाचन-क्रिया और शक्ति बिगाडी जाती है। धीरे धीरे बालक पर भूखका अधिकार चढ़ता जाता है। उसके पीछे एक ऐसी बुरी आदत लगा दी जाती है कि जो आजन्म उसका पीछा न छोडनेके अतिरिक्त उसे तरह तरहके रोगोका पात्र बना देती है। छोटे बालकोंको केवल दिनके समय और वह भी कमसे कम दो दो घटोंका अन्तर देकर बहुत ही थोड़ी मात्रामें दूध पिलाना चाहिए और रातको कभी दूध न पिलाना चाहिए। जिस समय बालक रोता हो उस समय उसे दूध पिलानेके बदले एक चमचा पानी पिला देना चाहिए। अधिकाश अवसरों पर बालकका रोना उसी पानीसे ही शान्त होगा और वह तुरन्त सो जायगा। यह बात चाहे साधारणत लोगोंके मनमे न बैठे, पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि अनुभव करके देखा जाय तो जान पड़ेगा कि इस प्रकार पाले हुए बालकोंमे से ७५ प्रति सैकड़े सदा नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहेंगे। प्रत्येक रोग भूख और जीभको काबूमें न रखनेके कारण ही होता है। जिस बालकको आरम्भसे ही भूख और जीभको काबूमें रखनेकी शिक्षा दी जायगी वह वयस्क होनेपर कभी रोगी न होगा।

पर अभाग्यवश आज कलके जमानेमें बहुत ही थोड़े बालक इस प्रकार पाले जाते हैं। प्राय उन्हें बार बार और इतना अधिक दूध पिलाया जाता है कि पाचन-क्रियाके प्राकृतिक नियमो और प्रेरणाओं आदिका बुरी तरह नाश हो जाता है। यहाँ तक कि जब बालक उनकी समझसे कम दूध पीता है तब वह रोगी माना जाता है और उसकी चिकित्साकी चिन्ता होने लगती है, पर जो लोग ध्यान और विचार-पूर्वक उपवाससे होनेवाले लाभोकी जाँच करते हैं उन्हें तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि बालकोंके प्राय सभी रोगोंका सम्बन्ध उनके अनियमित और अधिक भोजनसे ही होता है। वास्तवमें स्वय शरीर कभी रोगी नहीं होता, प्रकृतिके नियमोंके उल्लंघन, कुपथ्य और परिस्थिति आदिके विरोधके कारण उसे रोगी होनेके लिए विवश होना पड़ता है। प्रत्येक मातापिताका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपने बालकके स्वास्थ्यकी, उसे इन सब बातोंसे बचाकर, रक्षा करे।

उपवास किसे न करना चाहिए ।

अनुभव और परीक्षासे पता लगा है कि कई रोग ऐसे भी हैं जिनमें उपवाससे कोई लाभ नहीं होता । उनमेंसे एक क्षय-रोग भी है । इस रोगमें रोगीकी जीवनशक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि वह अधिक दिनोंतक उपवास कर ही नहीं सकता । ऐसे लोग यदि थोडा थोडा भोजन करें अथवा छोटे छोटे उपवास करें तो उन्हें वहुत लाभ हो सकता है । थोडे विचारसे ही इस सिद्धान्तकी उपयुक्तताका पता चल जाता है । वहुत ही थोडीसी वची हुई शक्तिवाले रोगीके लिए वडा उपवास करना कदापि युक्तिसगत नहीं हो सकता, क्योंकि उपवासके आरम्भमें शक्तिका ह्रास होता है । यदि थोडीसी वची हुई शक्तिका इस प्रकार नाश कर दिया जायगा तो ' रोग रहे न रोगी ' वाली कहावत ही चरितार्थ होगी । हाँ, यदि उसे पहले एक या दो दिनका उपवास कराया जायगा तो पाचनशक्ति और पक्वाशयको कुछ आराम मिलेगा और उनसे रोगको पचाने और विपोंको वाहर निकालनेमें कुछ सहायता मिलेगी । इसके उपरान्त उसे थोडी मात्रामें ऐसा भोजन देना उचित होगा जो शीघ्र ही पच सके और तदुपरान्त एक दूसरा छोटा उपवास कराना ठीक होगा । इस क्रियासे धीरे धीरे उसका शरीर नीरोग होने लगेगा और उसका वल भी न घटने पावेगा ।

यदि क्षयीके रोगीको आरम्भमे ही उपवास कराया जाय तो उससे वहुत लाभ हो सकता है । डा० मैकफेडनने अपने चिकित्सालयमे कई ऐसे रोगियोंको जिन्हें क्षयीरोग आरम्भ हुआ था, उपवास कराके चंगा किया है । कुछ अवस्थाओंमें यह भी देखा गया है कि उपवास-कालमें रोगीके शरीरका जो वजन घटा था, वह नीरोग होने पर फिर न वढा, ज्योंका त्यों वना रहा । वहुत सम्भव है कि ऐसे रोगी उपवासके उपरान्त भोजन आदिमे कुपथ्य करते हों और उसीके फलस्वरूप उनका वजन न वढता हो ।

यह वात आवश्यक नहीं है कि ससारके प्रत्येक रोगमे उपवास ही किया जाय । जो मनुष्य आवश्यकतासे अधिक खाता हो, यह समझ कर कि अधिक भोजनसे हमारे शरीरका वल वढेगा, थोडी थोडी देरके वाद और वहुतसा खाता हो तो अवश्य ही यह मानना पडेगा कि वह वहुत अधिक भोजन करनेके कारण

ही रोगी हुआ है । ऐसे मनुष्यके रक्तमें वहुतसा विप उत्पन्न हो जाता है जिसका परिणाम उसके शरीरके लिए वहुत ही हानिकारक होता है । प्राकृतिक नियम यह है कि यदि ऐसा मनुष्य उपवास करे और कुछ समयके लिए भोजन छोड दे तो अवश्य ही उसके रक्तमेंका विप नष्ट हो जायगा और उसके शरीरका वल बढेगा । पर जो मनुष्य वहुत दिनोंसे आवश्यकतासे कम भोजन करता आया हो और इस प्रकार वहुत ही दुर्वल हो गया हो, उसे उपवास करानेके लिए वहुत ही साव-धानीकी आवश्यकता होती है । एक दो अथवा अधिकसे अधिक तीन दिनोंके उपवासमे ही ऐसे मनुष्यकी पाचनशक्ति सुधर कर अपनी साधारण अवस्थातक पहुँच जायगी और वह यथेष्ट भोजन पचानेके योग्य हो जायगा । ऐसे लोगोंको तीन दिनसे अधिक निराहार रहनेकी आवश्यकता न होगी । उपवासकी समाप्ति पर ऐसे लोगोंको थोडासा हल्का और अधिक पोपक भोजन देना चाहिए, जो जल्दी पच जाय और जिससे उसके शरीरका वल अधिक वढे और उसका अधिक] पोषण हो । साधारणत ऐसा उत्तम भोजन दूध ही माना जाता है और उससे वहुधा यथेष्ट लाभ पहुँचता है । वहुतसे रोगियोंकी शक्ति इतनी नष्ट हो जाती है कि वे दूध भी नहीं पचा सकते । पर ऐसे लोगोंको भी कभी निराश न होना चाहिए और वहुत ही थोडी मात्रामें दूध या फलों आदिका रस पीते रहना चाहिए ।

ऊपर यह वतलाया जा चुका है कि जिन लोगोंकी जीवनशक्ति वहुत अधिक नष्ट हो गई हो उन्हें कभी अधिक दिनोंतक उपवास नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार जिन लोगोंका रोग औषध खाते खाते वहुत अधिक वढ गया हो उन्हें भी व्यर्थ उपवासको वदनाम करनेके लिए भोजन न छोडना चाहिए । गर्भवती स्त्रियोंके लिए भी उपवास करना युक्तिसगत नहीं है । इसके अतिरिक्त केवल मनोविनोद या दिखानेके लिए भी कभी उपवास न करना चाहिए । भारी शोक या चिन्ताके समय भी उपवास करना हानिकारक होता है, क्योंकि उपवास-कालमें सदा प्रसन्नचित्त रहनेकी आवश्यकता होती है । जो लोग सव प्रकारसे नीरोग हों और जिनके शरीरमें किसी प्रकारकी वीमारी न हो उन्हें भी व्यर्थ उप-वास न करना चाहिए, क्योंकि उपवास केवल रोगको शरीरसे वाहर निकाल देने-की एक सर्वोत्तम क्रिया है । स्वय उपवाससे शारीरिक सगठन और वल-वृद्धि

आदिमे कोई सहायता नहीं मिलती। हॉ, जो विष और विकार आदि शरीर संगठन और बल-वृद्धि आदिमे बाधक होते हैं, उन विषों तथा विकारोंको उपवास अवश्य ही शरीरके बाहर निकाल देता है।

जिस युवक अथवा युवतीकी पाचन-शक्ति ठीक हो, जिसे किसी प्रकारका रोग न हो, जिसका जिगर और फेफडा ठीक तरहसे काम करता हो, उसे उपवासकी कभी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग हो उसे केवल इसी बातकी आवश्यकता होती है कि वह पथ्यसे रहे, स्वच्छ वायुका सेवन करे और खूब कसरत करे। इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि एक मात्र उपवास ही सब रोगोको नष्ट करनेका उपाय नहीं है बल्कि उसके लिए शारीरिक सयम, खुली हवा, सूर्य्यके प्रकाश, पूरी नींद और यथेष्ट शारीरिक परिश्रमकी भी बहुत कुछ आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सदा नीरोग रहनेके लिए शुद्ध और निर्दोष मनोवृत्ति, दृढ निश्चय और प्रफुल्लता आदिकी भी बहुत बडी आवश्यकता होती है।

उपवाससम्बन्धी कुछ परीक्षायें।

जो लोग इस बातकी परीक्षा करना चाहें कि उपवाससे रोगका नाश होता है या नहीं, उनके लिए सबसे अच्छा और सहज उपाय यह है कि वे पहले एक या दो दिन तक उपवास करें। उस एक या दो दिनमे ही उन्हें बहुत कुछ लाभ मालूम होने लगेगा, और उस दशामे यदि अच्छी तरह उनको सन्तोष हो जाय तो वे और अधिक दिनोंतक उपवास कर सकते हैं। अथवा यदि उनकी हिम्मत न पडती हो तो वे पहले बहुत छोटे छोटे उपवास करें और ज्यो ज्यो उन्हे उसके लाभ मालूम होते जायँ त्यों त्यों वे अधिक दिनोंके उपवास करते जायँ। जिन लोगोंकी देखरेखके लिए योग्य उपवासचिकित्सक न मिल सकते हों और जिन्हें स्वय भी उपवाससम्बन्धी विशेष जानकारी न हो, उनके लिए इस उपायका अवलबन बहुत ही उत्तम और उपयुक्त है।

जिस उपवासकी समाप्ति पर जीभका स्वाद न सुधरे, जीभ पर जमी हुई पपडी आपसे आप न उतर जाय तथा इसी प्रकारके और दूसरे ऐसे चिह्न न

प्रकट हो जिनसे विषोंके वाहर निकल जानेका पूरा पूरा प्रमाण मिलता है, उस उपवासको अपूर्ण और अधूरा समझना चाहिए। साधारणत आठ दस दिनके उपवासको योग्य उपवास-चिकित्सक अधूरा ही समझते हैं। क्योंकि उन आठ दस दिनोंमे भी वास्तविक उपवासके दिन चार या पॉच ही होते है, और ऐसे छोटे उपवास विना किसी प्रकारकी कठिनता या कष्टके ही किये जा सकते है। ऐसे अधूरे उपवासोंसे शरीरकी कभी कोई शक्ति भी नहीं घटती। शक्तिके सम्बन्धमे सबसे पहले यह वात समझ लेनी चाहिए कि शक्ति न तो भोजन करनेके उपरान्त तुरन्त ही उत्पन्न होती है और न दुर्वलता सदा थोडा खानेसे ही होती है, दुर्वलताका मुख्य कारण वे विष होते हैं जो हमारे रक्तमें मिल जाते हैं।

इस अवसर पर हम एक ऐसा उपाय वतलाते है जिससे उपवासकी परीक्षा भी हो सकती है और आरम्भ भी। जो लोग उपवास पर विश्वास न करते हो अथवा विश्वास करने पर भी जिनमे उससे लाभ उठानेका साहस न हो उनके लिए यह उपाय वहुत ही अच्छा है। ऐसे मनुष्योंको उचित है कि वे पहले दिन उपवास करें और दो दिनतक नियमित भोजन करें और तव दो दिनों तक उपवास करके चार दिन नियमित भोजन करें, तदनन्तर वे चार दिन विना भोजनके रहकर आठ दिन भोजन करें और यह क्रम वरावर जारी रक्खे। इसमे सिद्धान्त यही होना चाहिए कि एक वार वे जितने दिनोंका उपवास करें, उपवासके उपरान्त उससे दूने दिनोंतक वे भोजन करें। इस प्रकार उन्हें उपवासके लाभ भी मालूम हो जाँयगे और वे विना अधिक कष्ट सहे उपवासका अभ्यास भी कर लेंगे। इसके सिवा उन्हें उपवास-कालमें प्रकट होनेवाले अनेक चिह्नों तथा उसके सम्बन्धमें दूसरी वहुतसी आवश्यक और जानने योग्य वातोंका पता भी लग जायगा और वे उस सम्बन्धमें सव प्रकारका अनुभव भी प्राप्त कर लेगे। इस अवसर पर हम यह भी वतला देना चाहते हैं कि उपवास-कालमे कभी स्वच्छ जलके अतिरिक्त और किसी चीजका वहुत छोटा टुकडा या एक दाना भी न खाना चाहिए, नहीं तो भूख उभड़ आवेगी और तव विवश होकर उन्हें भोजन करना ही पडेगा। उस समय सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

वहुत छोटा और अधूरा उपवास प्रत्येक दशामें और प्रत्येक अवसर पर किया जा सकता है। एक नीरोग मनुष्य जव चाहे तव एक या दो वारका भोजन

छोडकर अच्छा लाभ उठा सकता है। उपवासके लाभोंका वहुत कुछ पता उसीसे लग जाता है। जो मनुष्य यह समझता हो कि मुझे उपवास करनेकी आवश्यकता है, पर उसे लवे या वड़े उपवासोंसे भय लगता हो वह पहले एक वारका भोजन छोडे। तदुपरान्त जव उसे वहुत अधिक भूख लगे तव वह एक या दो गिलास साफ गरम पानी पी ले। अथवा एक गिलास ठंडा पानी वहुत ही धीरे धीरे, मानों चूस चूस कर पीए। यदि उस समय मुँहका स्वाद कुछ विगड जाय और पानी अच्छा न लगे तो उसमें नीवू या किसी और फलका वहुत थोडा सा रस डाल ले। जिस समय मुँहका स्वाद वदला हो अथवा भूख न मालूम हो उस समय कदापि भोजन न करना चाहिए। भूखकी सवसे अच्छी परीक्षा यही है कि मुँहका स्वाद ठीक हो और जो कुछ खाया जाय वह वहुत स्वादिष्ट मालूम हो। भोजन उसी समय अच्छी तरह पचता है जव कि वह सादेसे सादा होने पर भी वहुत स्वादिष्ट जान पडे। मुँहके अन्दर कुछ विशेप भाग ऐसे हैं जिन्हें अँगरेजीमें yast bueds कहते है। भोजनका स्वाद उसी समय मिलता है जव कि भोजनका उन भागोंमें समावेश होता है। और उनमें भोजनका समावेश उसी समय होता है जव कि मनुष्यका पक्वाशय खाली और भोजन ग्रहण करनेके लिए तैयार हो। जिस समय पाचनशक्तिके लिए पहलेसे ही वहुत सा काम तैयार हो और उसे नये भोजनको पचानेकी आवश्यकता न हो उस समय मनुष्यको भोजनका वास्तविक स्वाद कभी नहीं मिल सकता। स्वाद हमे यह वतलाता है कि इस समय हमें भोजनकी आवश्यकता है या नहीं।

जो लोग उपवास करते हों उनके लिए वीचवीचमें यह जाननेकी भी वडी आवश्यकता होती है कि अभी उपवास पूरा हुआ है या नहीं। यद्यपि उपवासकी समाप्ति पर मनुष्यको वास्तविक भूख लगती है और उसे भोजनकी वहुत अधिक आवश्यकता होती है, तथापि इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उपाय हैं जिनसे उपवासकी समाप्तिका पता चल जाता है। कभी कभी उपवासकी समाप्तिसे पहले ही किसी विशेप कारणवश कृत्रिम भूख लगनेकी भी सम्भावना होती है और उस दशामे अनेक दूसरे चिह्नोंसे इस वातका पता लगता है कि अभी उपवास समाप्त हुआ या नहीं। उपवाससे शरीरको पूरा पूरा लाभ पहुँचानेका सवसे अच्छा चिह्न यह है कि उपवासकालमे जीभ पर जो पपडी जमती है वह स्वयं ही धीरे धीरे साफ हो जाय और जीभका वास्तविक गुलावी रंग भीतरसे निकल आवे। इसके

अतिरिक्त उस समय मुँहका स्वाद भी बहुत अच्छा और मीठा हो जाता है और साँस बहुत साफ हो जाती है। पहले जो असाधारण और बहुत विलक्षण भूख लगी रहती थी वह मिट जाती है और उसके स्थान पर हल्की और स्वाभाविक भूख उत्पन्न होती है। उस समय बहुत हलके और स्वास्थ्यप्रद भोजनकी ओर ही रुचि होती है, सभी अच्छी बुरी चीजों पर मन नहीं चलता।

कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं जिनमें रोगीको बीचमें ही उपवास छोड़ देना चाहिए। जिस समय रोगीमें चलने फिरने, यहाँ तक कि उठने बैठनेकी भी शक्ति न रह जाय और जब कि वह इतना निर्बल हो जाय कि सदा बिछौने पर ही पड़ा रहे तो उसे अवश्य अपना उपवास छोड़कर भोजन आरम्भ कर देना चाहिए। उस समय उसे बहुत थोड़ा दूध या फलों आदिका रस पीना चाहिए जिसमें उसका शरीर धीरे धीरे हरा होने लगे। पर इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास कालमें बहुधा कृत्रिम दुर्बलता भी हो जाती है। यदि प्रातःकाल सोकर उठनेके समय दुर्बलता जान पड़े और सिरमें चक्कर आवे अथवा उठा न जाय, तो उस समय थोड़ा साहस करके उठ बैठना चाहिए और धीरे धीरे या लकड़ी आदिके सहारे इधर उधर टहलना चाहिए। इस प्रकार थोड़ी ही देरके बाद शरीरकी सब शक्तियाँ चैतन्य और जाग्रत हो जायँगी और शरीरमें साधारण शक्ति आ जायगी। बहुतसे ऐसे रोगी देखे गये हैं जिन्हें पहले तो बहुत अधिक दुर्बलता जान पड़ती थी, पर जहाँ उन्होंने थोड़ीसी गहरी और लम्बी साँसें लीं और दो चार बार उठने बैठनेका प्रयत्न किया तहाँ उनमें इतनी शक्ति आगई कि वे बिना थके हुए मीलोंका चक्कर लगा आये। ऐसे लोगोंको कभी उपवास छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, जो लोग वास्तवमें एकदम निर्बल हो गये हों और सब कुछ प्रयत्न करने पर भी उठने बैठनेतकमें असमर्थ हों, उन्हें अवश्य उपवास छोड़ देना चाहिए। बात केवल यही है कि उपवासकालमें शरीरकी शक्तियोंको जाग्रत करने और काम करनेके योग्य बनानेके लिए थोड़ेसे परिश्रमकी आवश्यकता होती है। शरीरमेंसे आलस्य निकलते ही मनुष्य ज्योंका त्यों हो जाता है और अपने सब काम बड़े आनन्दसे पहलेकी तरह करने लगता है। वास्तविक दुर्बलता बहुधा उन्हीं लोगोंको होती है जो आवश्यकतासे अधिक उपवास कर जाते हैं, या उपवास-कालमें यथेष्ट व्यायाम नहीं करते।

उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए ?

उपवस करनेवालोंके लिए यह जानना बहुत अधिक आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार छोडना चाहिए। यदि उपवास छोडनेके समय किसी प्रकारकी असावधानता या कुपथ्य हो जाय तो उपवासका सारा लाभ नष्ट हो जाता है और कभी कभी उलटे हानि भी सहनी पडती है। यदि नियमोंका ठीक ठीक पालन किया जाय तो चिन्ताकी कोई बात नहीं रह जाती और शरीर बिलकुल नीरोग और पुष्ट हो जाता है। उपवास छोडनेके उपरान्त कुछ अधिक खा लेनेसे मृत्युतककी सम्भावना होती है। इस लिए बहुत तेज भूखके फेरमें पड़कर एक ही बारमें बहुत सा भोजन न कर लेना चाहिए। उपवास छोडनेके उपरान्त खानेकी इच्छा इतनी अधिक होती है कि उस समय जो कुछ मिले वही खा जानेका मन करता है। इसका यह कारण नहीं है कि उस समय उपवास करनेके उपरान्त भूखका जोर ही इतना अधिक बढ जाता है, बल्कि उस समय मनकी अवस्था ही ऐसी हो जाती है। इस सम्बन्धमे एक अच्छे विद्वान्का मत है—

"उपवास छोडनेके समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। उपवासकी समाप्तिके उपरान्त शरीरकी रचना मानो पुन नये सिरसे होती है और उस समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हम क्या खायँ, किस प्रकार खायँ और कितना खायँ। उपवास छोडनेके उपरान्त जब हम भोजन आरम्भ करते हैं, उस समय हमारी इच्छा बहुत अधिक खानेकी होती है। यदि हम उस समय अधिक खाना आरम्भ कर दें तो उपवास करनेसे हमारे शरीरको जितने लाभ हुए होगे वे सब नष्ट हो जायँगे। इसलिए उपवास छोड़नेके समय किसी अच्छे उपवासचिकित्सककी सम्मति लेनी चाहिए, और जिस प्रकार वह बतलाए उस प्रकार हमें भोजन करना चाहिए और बराबर कसरत जारी रखनी चाहिए।"

अधिक दिनोंका उपवास करनेवाले लोगोको उपवास छोड़नेके समय भोजन पर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यता होती है। हॉ, एक दो या चार दिनोंका उपवास करनेवालोंको उसके लिए उतनी चिन्ता न करनी चाहिए। पर जो लोग कई सप्ताहों या मासों तक बिना भोजनके रह चुके हों उन्हें उस समय तक भोजनका विशेष ध्यान रखना चाहिए, जब तक उसके भोजन पचानेवाले अवयव भोजनको

अच्छी तरह पचानेमें समर्थ न हो जायँ। उपवास छोड़नेके उपरान्त पहले या नियमके अनुसार भोजन करनेका प्रयत्न कदापि न करना चाहिए और न भोजन करनेमें किसी प्रकारका उतावलापन करना चाहिए। भोजन बहुत ही थोड़ी मात्रामें आरम्भ करके बहुत धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए।

बहुत दिनोंतक बिना भोजनके रहनेके कारण रोगीके शरीरकी हालत बहुत नाजुक हो जाती है और उपवास छोड़ने पर, बल्कि बहुधा बीचमें भी उसे इतनी भूख लगती है कि यदि वह किसी अच्छे डाक्टरकी देखरेखमें हो तो कभी कभी लुक-छिपकर भी कुछ खानेका प्रयत्न करता है। अतः डाक्टरोंकी देखरेखमें उपवास करनेवालोंको यह बात दृढ़तापूर्वक अपने मनमें अंकित कर लेनी चाहिए कि बिना डाक्टरकी सम्मतिके अथवा उसे बतलाये हुए कभी कोई काम न करना चाहिए; विशेषतः कभी कोई चीज खानी न चाहिए। उस समय भूख ऐसी लगती है कि जो चीज और जितनी मात्रामें मिले वह सब खाई जा सकती है। उस समय लोग कभी कभी ऐसी चीजें भी खा लेते हैं, जिनका शरीर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। उस दशामें डाक्टरको भी भारी विपत्तिका सामना करना पड़ता है और रोगीको भी बहुत कष्ट सहना पड़ता है। यदि इस बातका पता लग जाय कि उपवास छोड़नेके उपरान्त किसीने कोई अधिक अथवा हानिकारक पदार्थ खा लिया है तो तुरन्त कै कराके अथवा एनिमाकी सहायतासे उसके पेटमेंसे वह पदार्थ निकलवा देना चाहिए। यदि उपवास करनेवालेसे न रहा जाय तो उसे कमसे कम डाक्टरकी सम्मतिके अनुसार अवश्य चलना चाहिए, जिससे वह बहुतसी भूलों और दोषोंसे बचा रहे।

जिन लोगोंका शरीर दुर्बल हो उनके लिए और भी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। उनमेंसे कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वास्तवमें दो तीन सप्ताह तक उपवास करनेकी आवश्यकता होती है। पर एक ही सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त वे इतने दुर्बल हो जाते हैं, कि उन्हें उपवास छोड़ देनेकी आवश्यकता होती है। यदि पहली बार ही रोगी अधिक दिनोंका उपवास न कर सके तो उसके लिए अच्छा उपाय यह है कि जिस रोगके लिए उपवास कराया जाता हो वह रोग जब तक अच्छा न हो जाय तब तक वह रोगी थोड़े थोड़े दिनोंका

उपवास करता रहे और ज्यों ज्यों उसकी शक्ति वढती जाय त्यों त्यों वह उपवासकी मुद्दत भी वढाता जाय। जो लोग दुर्वल होते हैं वे आरम्भमें अधिक लवे उपवास नहीं कर सकते, पर यदि वे धीरे धीरे अपने उपवासकी मुद्दत वढाते जायँ तो आगे चल कर अधिक उपवास कर सकते हैं।

प्रत्येक उपवास करनेवालेको यह वात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि **छोटे या वड़े प्रत्येक उपवाससे होनेवाला लाभ उपवास छोड़नेके प्रकार पर ही अवलंवित रहता है**। जिस प्रकार कोई वहुत दुःखभरी वात किसीको वहुत धीरे धीरे सुनाई जाती है उसी प्रकार उपवास भी वहुत धीरे धीरे छोड़ना चाहिए। उपवास छोडनेके पहले अच्छे फलोंके रसके सिवा और कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। अगूर या सन्तरे आदिका रस सवसे अच्छा है। इनमेंसे किसी फलका रस एक छोटे से गिलासमें लेकर उसमें थोडी चीनी डाल देनी चाहिए और उसमेंसे वहुत ही धीरे धीरे एक एक घूँट करके और स्वाद ले ले कर गलेमे उतारना चाहिए। एक दमसे वहुत सा रस गटर गटर करके पी जाना वहुत ही हानिकारक है। इस प्रकार दिनमें दो तीन वार रस पीना चाहिए। दूसरे दिन ताजा, वढिया और गरम दूध एक एक गिलास करके दिनमें तीन चार वार पीना चाहिए। दूध या रसको वरावर उस समय तक मुँहमें ही रखना चाहिए, जवतक उसमें किसी प्रकारका स्वाद रहे। तीसरे दिन दूधकी मात्रा कुछ वढा देनी चाहिए और उसके साथ कुछ खट्टे (एसिडवाले) फल भी खाने चाहिए। चौथे दिन दूधकी मात्रा और फलोंकी सख्या कुछ वढा देनी चाहिए। पाँचवें दिन सदाके नियमानुसार अपना साधारण पर सादा भोजन करना चाहिए; लेकिन वह भोजन नित्यकी मात्रासे कम हो। जो लोग एक सप्ताह या इससे अधिक समय तक उपवास कर चुके हो उनके लिए इन नियमोंका पालन वहुत ही आवश्यक है।

इस अवसर पर यह वतला देना आवश्यक जान पडता है कि, उपवासकालमें शरीरके भीतर क्या क्या फेरफार होते हैं। शरीरमेसे सदा कुछ ऐसे रस निकलते रहते हैं, जिनसे भोजन पचता है। उपवासकालमे उन रसोंका निकलना वन्द नहीं होता वल्कि वरावर जारी रहता है। पर स्वयं पक्वाशयकी शक्ति वहुत मन्द पड

जाती है और यही कारण है कि उपवासकी समाप्ति पर उसके लिए एक दममें भारी या अधिक भोजन पचा लेना असम्भव होता है। शरीरके भीतरी भागसे निकलनेवाले पाचक रसोंकी मात्रा चार पाँच दिनों बाद कुछ कम होने लगती है। इसलिए चार दिनोंतकका उपवास करनेवाले लोग उपवासके उपरान्त नियमानुसार भोजन कर सकते हैं, क्योंकि उन लोगोंको उस भोजनसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। यद्यपि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो एक सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त भी बिना किसी प्रकारकी जोखिम सहे नियमानुसार भोजन कर लेते हैं, पर तो भी सर्व साधारणको इनके लिए बहुत ही सचेत रहना चाहिए। जिन लोगोंको उपवास छोड़नेके दो दिन बाद बहुत अधिक भूख लगनेके कारण बेचैनी हो उनकी बेचैनी थोड़ा दूध पीते ही दूर हो जायगी और शरीरको किसी प्रकारकी हानि भी न पहुँचेगी। उपवास छोड़नेके पाँच छः दिन बाद भी जब नियमित भोजन आरम्भ किया जाय तब कुछ दिनों तक इस बातका बहुत ध्यान रखना चाहिए कि भोजन बहुत ही हल्का और सदासे कम हो। जीभके स्वाद अथवा और किसी कारणसे कभी अधिक न खाना चाहिए। साधारणत उपवासचिकित्सालयोंमें जब एक सप्ताह या इससे अधिक समयतक उपवास करनेवालेका उपवास छुड़ाया जाता है, तब पहले दो दिनों तक उसे केवल फलोंके रस ही देते हैं और तब उसके बाद तीसरे दिनसे दूध आरम्भ करते हैं। तीसरे दिन दो दो घंटे पर और चौथे दिन एक एक घंटे पर एक गिलास दूध दिया जाता है। पाँचवे और छठे दिन इसी प्रकार अन्तर कम किया जाता है और ज्यों ज्यों उपवास करनेवालेकी पाचनशक्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसे अधिक दूध मिलता जाता है। दूधकी मात्रा इस प्रकार धीरे धीरे बढ़ानेसे तौलमें शरीर भी बहुत जल्दी जल्दी बढ़ने लगता है। कभी कभी तो वह एक ही दिनमें डेढ़ दो सेर तक बढ़ जाता है। बहुतसे उपवास करनेवाले एक ही सप्ताहमें तौलमें १२-१२ सेरतक बढ़ गये हैं।

उपवासके उपरान्त दूध पीनेसे अनेक लाभ होते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि दूध हलका और लघुपाक होता है और दूसरे, शरीरका बल बहुत बढ़ाता है। उसका तीसरा लाभ यह भी होता है कि भोजन करनेकी बहुत प्रबल इच्छा इससे बहुत कुछ दब जाती है। पर जो लोग दूध पर किसी प्रकार

रह ही न सकते हो उन्हें वहुत ही अल्प मात्रामे चौथे या पॉचवें दिनसे अपना नियमित भोजन आरम्भ करना चाहिए । जो लोग चार दिनोंतकका उपवास कर चुके हो उन्हें भी अपना नियमित भोजन आरम्भ करनेके समय इस वातका ध्यान रखना चाहिए कि जिस दिन वे भोजन आरम्भ करें उस दिन रोजसे आधा भोजन करें । जो लोग एकसे दो सप्ताह तकका उपवास कर चुके हो उन्हें भोजन आरम्भ करनेके दिन नित्यके भोजनका पाँचवाँ भाग खाना चाहिए, उसके दूसरे दिन नित्यके भोजनका तीसरा भाग, तीसरे दिन आधा भाग और चौथे दिन नित्यसे कुछ कम खाना चाहिए । पॉचवें दिनसे यदि वे नियमित रूपसे भोजन करें तो कोई हानि नहीं है । उपवासके उपरान्त जो कुछ कम खाया जाय वह वहुत ही सादा और वलवर्द्धक होना चाहिए । जितना ही सादा भोजन किया जायगा उतना ही अधिक स्वाद मिलेगा ।

अव हम उपवास छोडनेके सम्वन्धमे दो सज्जनोके मत देकर यह प्रकरण समाप्त करते हैं । अपूटन सिंक्लेअर अपने निजके अनुभवके अनुसार लिखते हैं—

" वरनर्ड मैकफैडनका उपवास-चिकित्सालय छोड़नेके उपरान्त मैंने कई वार उपवास किये हैं और प्रत्येक वार मैंने भिन्न भिन्न प्रकारका भोजन लेकर उपवास छोडनेका प्रयत्न किया है । जिस समय मै एलवामामें था उस समय मैंने वारह दिनोंका उपवास किया था । उपवासकालमे मेरी इच्छा वहाँके एक विशेष प्रकारके फल पर वहुत अधिक थी, इस लिए जव मैंने उपवास छोडा तव वही फल खाया था, पर उसके खानेसे मेरे पेटमें मरोड होने लगा । तवसे मैं वरावर लोगोंको वह फल खानेसे मना करता हूँ । मेरे एक मित्रने एक वार उपवास छोडनेके उपरान्त मीठे नीवूका रस लिया था, उसे भी मेरी ही तरह मरोड हुआ था पर वह ऐसी प्रकृतिका मनुष्य था, जिसे खट्टे या एसिडवाले फल जरा भी अच्छे न लगते थे । मैं एक ऐसे आदमीको भी जानता हूँ जिसने मास खाकर उपवास छोडा था, पर यह भोजन इस योग्य नहीं है कि इसकी सिफारिश की जाय । मेरी एक परिचिता स्त्रीने एक सप्ताहका उपवास किया था और उसे छोडते समय उसने चावल और उवाले हुए अडे खाये थे । पर इस भोजनसे उसे किसी प्रकारका लाभ न जान पडा, क्योंकि उसकी भूख

जितनी अधिक बढ़नी चाहिए थी उतनी उससे न बढ़ी थी। लगातार कई सप्ताहों तक चावल और अंडा खाते रहनेसे पैखाना बिल्कुल नहीं होता था।

" मेरा अनुभव यह है कि उपवासके उपरान्त पक्वाशय बहुत ही दुर्बल जान पड़ता है और उस पर बहुत ही शीघ्र हानिकारक प्रभाव पड़नेकी सम्भावना होती है। इसके अतिरिक्त उस समय आँतोंकी शक्ति भी बहुत कम होती जाती है। इसलिए उस अवसर पर ऐसा भोजन पसन्द करना चाहिए, जो बहुत जल्दी हजम हो सके। साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि जब तक आँतोंमें शरीरका मल बाहर निकालनेकी पूरी पूरी शक्ति न आ जाय तब तक एनिमाका उपयोग बराबर जारी रखना चाहिए। उपवास छोड़नेके समय पहले दो या तीन दिनोंतक केवल मीठे नीबू या अंगूरके रस पर रहना चाहिए और तदुपरान्त दूधका सेवन आरम्भ कर देना चाहिए। उस समय पहले पहले आधा गिलास गरम दूध पीना चाहिए। यदि केवल दूध अच्छा न लगता हो तो उसमें अंगूर, खजूर या आलू भी मिला लेना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो चावल, ज्वार और शोरबे आदिका व्यवहार भी आरम्भ कर देना चाहिए, पर उसके साथ ही साथ एनिमा लेना भी भूल न जाना चाहिए। मैंने तीन तीन दिनके कई उपवास छोड़े हैं, मुझे निश्चय हो गया है कि उस समयके लिए दूधसे बढ़कर और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है।"

उपवासचिकित्साके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर टेनरने अपना पहला उपवास छोड़ते समय आरम्भसे ही तरबूज खाना शुरू किया था। यद्यपि कुछ विशेष अवस्थाओंमें तरबूज उपयुक्त हो सकता है तथापि प्रत्येक मनुष्यके लिए आरम्भसे ही तरबूज खाना ठीक न होगा। एक व्यक्तिने पहले कुछ अखरोट पानीमें भिगो लिये थे और तब उन्हें आठ दस पहर तक सुखाया था, उपवास छोड़नेके समय उसने वही सुखाये हुए अखरोट खाये थे। उसका कथन है कि इस भोजनसे मेरा पूरा सन्तोष हुआ था और मुझे कोई हानि नहीं पहुँची थी। अपने इच्छानुसार कोई हल्का और शीघ्र पचनेवाला भोजन किया जा सकता है। उसमें विशेष ध्यान रखने योग्य केवल एक यही बात है कि उपवास छोड़नेके उपरान्त

बहुत अधिक भूख लगने पर कभी भोजन बहुत अधिक न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिए। इस प्रकार दो चार दिनोतक नहीं बल्कि दो तीन सप्ताहो तक रहना चाहिए।

डाक्टर हरवर्ड केरिंगटन उपवास-चिकित्साके बहुत बडे ज्ञाता और पंडित माने जाते हैं। उपवास छोडने और उस समय भोजन करनेके सम्बन्धमें आपकी जो सम्मति है उसे परमोपयोगी समझकर हम इस स्थान पर उसका आशय दे देते हैं —

" उपवास छोडनेकी क्रिया मेरी समझमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। क्योंकि यदि उपवास छोडनेमे किसी प्रकारकी असावधानी की जायगी तो उपवाससे उत्पन्न अधिकांश लाभ प्राय बहुत कम हो जायँगे। जिन लोगोंको उपवाससम्बन्धी विशेप अनुभव है वे यह वात भलीभाँति समझते होंगे कि उपवास छोडनेके समय कितनी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। मैं अपने अनुभवके अनुसार इस सम्बन्धमें कुछ वातें वतलाता हूँ।

"उपवाससम्बन्धी सबसे बड़े इस नियमका ध्यान सदा और अवश्य रखना चाहिए कि **प्रकृति हमें स्वयं यह वतलाती है कि उपवास कब छोड़ना चाहिए।** उस सम्बन्धमें हमारे शरीरमे कुछ विशेष और स्पष्ट चिन्ह प्रकट होते हैं जिनमेसे कुछका उल्लेख यहाँ किया जाता है,—

(१) उपवासकालमें शरीरकी जो गरमी साधारणसे अधिक अथवा कम हो जाती है, वह उपवास छोडनेके समय अपनी ठीक (Normal) अवस्थामें आ जाती है।

(२) उपवासकालमे जीभ पर जो पपडी जमी होनी है वह धीरे धीरे आपसे आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

(३) उपवासकालमे नाड़ी अधिक शीघ्रतासे अथवा धीमी चलती है, पर उपवास छोडनेकी आवश्यकता होने पर वह अपने नियमित रूपसे चलने लगती है।

(४) उपवासकालमें जो साँस दुर्गन्धयुक्त रहती है वह उपवास पूरा होने पर बिलकुल साफ और विना दुर्गन्धकी हो जाती है।

(५) त्वचा तथा शरीरके दूसरे अंग जो पहले विशेष वा न्यून रीतिसे काम करते थे, वे अपनी साधारण स्थितिमें आकर पूर्णरूपसे काम करने लगते हैं।

(६) अन्तिम और सबसे बड़ा चिह्न यह है कि भूख नियमित रूपसे और अपनी साधारण अवस्थामें लगती है, कृत्रिम भूखकी तरह विशेष रूपसे नहीं लगती।

" कई दिनों तक किसी प्रकारका भोजन न करनेके उपरान्त जब शरीर अपनी साधारण अवस्थामें पहुँच जाता है तब उक्त चिह्न प्रकट होते हैं।

" इस अवसर पर प्रश्न हो सकता है कि वास्तविक और कृत्रिम भूखकी पहचान क्या है ? दोनों अवस्थाओंमें ही मनुष्य कह सकता है कि मुझे भूख लगी है। उनमेंसे एकको भोजनकी वास्तविक आवश्यकता है, पर दूसरेको वैसी आवश्यकता नहीं होती। ऐसी दशामें यह किस प्रकार जाना जा सकता है कि उनमेंसे किसे भोजन दिया जाना चाहिए और किसे नहीं ?

"इसलिये वास्तविक और कृत्रिम भूखको पहचाननेके लिए उनका कुछ अन्तर बतला देना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय झूठी भूख लगती है उस समय पेटमें एक प्रकारकी थोड़ी बहुत गुड़गुड़ी होती है। पर जिस समय वास्तविक या सच्ची भूख लगती है उस समय शरीरमे वे चिह्न उत्पन्न होते हैं, जो ऊपर बतलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त गलेमें एक विशेष प्रकारकी खुश्की सी होती है, जो वास्तवमें प्यास तो नहीं होती पर प्यास सी जान पड़ती है। गलेकी गिलटियों (Glands) में से एक प्रकारका पानी या रस निकलने लगता है। यह पानीका रस निकलना ही वास्तविक भूखका सबसे अच्छा और प्रामाणिक चिह्न है। उपवास-कालकी समाप्तिके और चाहे जितने लक्षण शरीरमें उत्पन्न हो जायँ, पर जब तक गलेकी गिलटियोंसे पानी न निकलने लगे तब तक कभी उपवास न छोड़ना चाहिए।

" दूसरा लक्षण यह है कि जिस मनुष्यको झूठी भूख लगी होगी, वह जो कुछ पावेगा सो सब अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए खा लेगा। पर जिसे वास्तविक भूख लगी होगी वह खानेके लिए कोई विशेष पदार्थ माँगेगा। उस अवस्थामें समझ लेना चाहिए कि अब वास्तविक भूख लगी है।

" इस अवसर यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जब तक वास्तविक भूखके चिह्न प्रकट न हों तब तक उपवास करनेमें कोई जोखिम तो नहीं है ? उपवाससमाप्तके चिह्न उत्पन्न होनेसे पहले ही उपवास करनेवाला मर तो न जायगा ? इस प्रश्नका बहुत सीधा, सहज, निश्चयात्मक और विश्वसनीय उत्तर यही है कि, ऐसा कदापि न होगा। इसमें न तो किसी प्रकारकी जोखिम है और न जान जानेका भय है। जोखिम अथवा मृत्युकी अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूखके चिह्न अवश्य प्रकट हो जायँगे। बात यह है कि अन्नके बिना मरनेसे पहले कुछ समय तक मनुष्यका शरीर धीरे धीरे गलता रहता है और उस अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूख लग आती है।

" जो लोग बिना अन्नके भूखों मरते हैं उनके शवकी परीक्षा करके यह जाना गया है कि मरनेके समय उनके शरीरमेंसे नीचे लिखे पदार्थ इतने मानमें घटते हैं—

चरबी ....९७ भर
स्नायु (Tissuese)...३० ”
कलेजा (Liver) ..५६ ”
तिल्ली (Spleen) ...५३ ”
और खून केवल .. ...१७ ” नष्ट होता है।

" ज्ञानतन्तुओं (Nervous system) का कोई अंश नष्ट नहीं होता। इस कथनके प्रमाण शरीर–शास्त्रके प्रत्येक प्रामाणिक ग्रन्थमें मिल सकते हैं।

" ऊपरके अंकोंसे इस बातका पता लग जाता है कि उपवास-कालमें शरीरका वही अंश सबसे अधिक नष्ट होता है, जिसका उपयोग हमारे शरीरके अस्तित्वके लिए बहुत ही कम होता है। वह अंश चरबी है। इसके अतिरिक्त शरीरमें और भी अनेक अनावश्यक पदार्थ होते हैं, जिनपर उपवासकालमें शरीरका पोषण होता है और यही शरीरके नीरोग होनेका प्रधान कारण है।

" उपवास छोड़नेके सम्बन्धमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि भोजन आरम्भ करनेके समय बहुत सावधानीसे और समझ बूझ कर सब काम करना चाहिए। उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो उसे छोड़नेके समय उतनी ही अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। साधारण कागज छापनेका प्रेस जब कुछ समय तक बन्द रहनेके उपरान्त फिरसे चलाया जाता है उस समय आरम्भमें उसे

हमेशा वहुत धीरे धीरे चलाते हैं और उसकी गति क्रमश बढाते जाते हैं। पर यदि उसे आरम्भमें ही पूरी तेजीके साथ चलाया जायगा तो वह अवस्य ही टूट जायगा अथवा उसका कोई कल पुरजा बिगड जायगा। उस समय वह यन्त्र ऐसा बिगड जायगा कि उसे वहुत समय तक बन्द रखनेकी आवस्यकता होगी। ठीक यही दशा अपने शारीरिक यन्त्रकी भी समझिए। यदि कुछ दिनोंके उपवासके उपरान्त तुरन्त ही इससे पूरी तेजीसे काम लिया जायगा तो वह अवस्य ही बे-काम हो जायगा, इस लिए उपवास हमेशा धीरे धीरे छोडना चाहिए और ज्यों ज्यों दिन वीतते जायँ त्यों त्यों भोजनकी मात्रा बढती जानी चाहिए। इस प्रकार पाचनक्रिया उत्तमरूपसे होती रहेगी और शरीरका वल भी क्रमश बढता जायगा।

"उपवास जव तक स्वाभाविक रूपसे स्वय ही पूरा न हो जाय, जव तक उसकी पूर्तिके सब लक्षण दिखाई न देने लगें तब तक उसे स्वय न छोड देना चाहिए। वीचमें ही उपवास छोड़ना मानों चलती गाड़ीमें रोड़ा अटकाना है। शरीरकी आरोग्य-क्रियामें इससे वहुत विघ्न पड़ेगा। पेटमे आये हुए नये पदार्थोंको ठिकाने लगानेमें ही शक्ति लगने लगेगी और आरोग्य-क्रिया वहुधा मन्द पड जायगी। इसलिए उपवासको विना पूरा किये वीचमे ही छोड़ देना ठीक नहीं है। मान लीजिए कि किसी मनुष्यने १५ दिनों तक उपवास किया। उसकी जीभ पर पपडी अभीतक जमी हुई है और उसकी साँसमेंसे वदवू निकलती है, उस समय यदि वह एक ग्रास भी खा लेगा तो वहुत शीघ्र उसकी भूख वढने लगेगी और शरीरकी आरोग्य-क्रिया वन्द हो जायगी। उसकी जीभपरकी पपडी उतर जायगी, साँसकी वदवू जाती रहेगी, उसके शरीरके विषोंका वाहर निकलना वन्द हो जायगा और शरीरकी अधिकाश शक्ति भोजन पचानेमें लगने लगेगी।

"इस अवसर पर यह वात भी ध्यान रखने योग्य है कि उपवास आरम्भ कर-नेके दो दिन वाद मनुष्यको भूख ही नहीं लगती। यही आरम्भिक दो दिन वड़ी कठिनतासे वीतते हे और यह कठिनता शरीरके अस्वाभाविक दशासे स्वाभा-विक अथवा शान्त दशामें आनेके कारण होती है। इन दो तीन दिनोंके उपरान्त उपवास करनेवालेका समय वहुधा वहुत शान्तिपूर्वक और आनन्दसे कटता है। जवतक उसके शरीरके विषोंका शमन नहीं हो जाता तवतक उसे वास्तविक भूख नहीं लगती।

"सच्ची भूख लगना ही उपवासकी समाप्तिका सबसे अच्छा लक्षण है। सच्ची भूख हमें यह वतलाती है कि हमारे शरीरसे सब प्रकारके विष बाहर निकल गये हैं और अब वह भोजनके लिए तैयार हो गया है। उस अवस्थामे भोजनके विषयमें दो वाते विचारणीय होती हैं। एक तो यह कि भोजन कितना होना चाहिए और दूसरे यह कि वह किस प्रकारका होना चाहिए।

"ऊपर बतलाया जा चुका है कि आरम्भमें भोजन बहुत ही कम होना चाहिए। पहले सप्ताह तो बहुत ही कम भोजन करना चाहिए और उसकी मात्रा धीरे धीरे बढानी चाहिए और तदुपरान्त साधारण और नियमित भोजन करना चाहिए। पर उस दशामें भी इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि दिन रातमें केवल दो बार भोजन किया जाय और कुछ भूख बाकी रहने पर ही भोजनसे हाथ खींच लिया जाय। उपवास छोडनेके उपरान्त सबसे पहले दो दिनों तक केवल तरल पदार्थोंसे ही भूख शान्त करनी चाहिए। उस समय दृढतापूर्वक भूखको अपने वशमें रखनेकी बहुत बडी आवश्यकता होती है।

"उपवास छोडनेके समय किस प्रकारका भोजन करना चाहिए इसके विषयमें कुछ मतभेद है। डाक्टर डेवीकी सम्मति है कि उस समय जिस चीजकी इच्छा हो वही चीज खाई जाय। पर मेरी समझमें यह विधान ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि उस समय मनुष्यका मन तरह तरहकी चीजों पर चलता है; यदि वह सभी चीजें खाने लगा तो उनमेंसे बहुतसी उसके लिए हानिकारक प्रमाणित होंगी। बहुतसे रोगियोंके अनुभवसे मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि मनुष्य जन्मसे जो पदार्थ अधिक मानमें खाता आता है, उपवास छोडनेके समय उसकी रुचि साधारणत उसी पदार्थकी ओर होती है। उत्तरीय ध्रुवके एस्किमो लोग उपवास छोडनेके उपरान्त चरबी और मछली और अँगरेज लोग उबाला हुआ मास और आलू ही माँगेंगे। जो लोग जन्मसे अन्न, शाक और फल खाते आये होंगे वे सदा अन्न और फल ही माँगेंगे।

"परन्तु प्रेरणा और बुद्धि दोनों सदा साथ ही साथ काम नहीं करतीं। इसलिए क्षुधातुरकी माँगी हुई चीज उसे देना सब दशाओंमें ठीक नहीं। मनुष्य मात्रके शरीरका सगठन समान प्रकारका और समान पदार्थोंसे ही होता है। इसलिए उन सबके लिए कमसे कम उस स्वाभाविक दशासे एक ही प्रकारका ऐसा

निश्चित भोजन होना चाहिए जो उनके शरीरके लिए लाभदायक और पुष्टिकर हो। मेरी समझमें उपवास छोड़नेके समय इस प्रकार भोजन आरम्भ करना चाहिए;—

" **पहला दिन**—जब उपवास छोडनेका समय आवे और उसकी समाप्तिके सब लक्षण दिखाई दें उस समय उपवास करनेवालेको एक गिलास सन्तरेका पतला रस पीना चाहिए। यदि वह कुछ गाढा हो तो उसमें थोडा पानी भी मिला लेना चाहिए। इसी प्रकारके और दूसरे फलोंका रस भी लिया जा सकता है, पर वह रस न तो बहुत ठंढा होना चाहिए और न उसमें चीनी मिली होनी चाहिए।

" **दूसरा दिन**—रोगीको इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पेटमे अधिक पदार्थ न चला जाय, क्योंकि उस दिन भूख बहुत लगती है और भीषण रूप धारण कर लेती है। उस समय इच्छा और भूखको वशमें रखनेकी बहुत आवश्यकता होती है। यदि उस समय विशेष सावधानी न रक्खी जायगी तो परिणाम बहुत ही भयंकर होगा।

" दूसरे दिनके लिए सबसे अच्छी खोराक सन्तरा है। खजूर और अंजीर आदि और अवसरों पर भले ही लाभदायक हों पर उपवास छोडनेके समय उनका व्यवहार करनेकी सम्मति मैं नहीं देता। दूसरे दिन जहाँ तक हो सके एक ही फल खाकर काम चलाना चाहिए। यदि एक फल खाकर न रहा जाय तो एक और खा लेना चाहिए—इससे अधिक नहीं।

" **तीसरा दिन**—उपवास छोडनेके दो ही तीन दिन बाद तक बहुत सावधानीकी आवश्यकता होती है। इसके बाद यदि दिन पर दिन भोजन बढाया जाय तो कोई हानि नहीं होती। तीसरे दिन एक आध रोटी, थोडी तरकारी और एक गिलास गरम दूध तक लिया जा सकता है। उस दिन एक तो भोजन बहुत सादा होना चाहिए और दूसरे मात्रामें भी कम होना चाहिए।

" उपवास छोडनेके उपरान्त बहुधा दूध ही सबसे अधिक उपयुक्त और लाभदायक होता है। उपवास छोडनेके दूसरे दिन जो दूध पीया जाय वह इतना ही गरम हो कि उससे मुँह न जले। दूध एक एक घूँट करके और बहुत धीरे धीरे पीना चाहिए। हर एक घंटे बाद एक गिलास दूध पीया जा सकता है। तीसरे दिन हर घण्टे पर एक गिलास दूध पीना चाहिए। दूधसे शरीरका बल भी बढता है और वजन भी। शरीरके लिए सबसे अच्छा पोषक पदार्थ यही माना जाता है। प्रत्येक दशामें इससे लाभ ही होता है, हानि कभी नहीं होती।"

दिन रातमें एक वार भोजन ।

प्रत्येक बुद्धिमान् यह वात स्वय ही समझ सकता है कि वहुत अधिक या आवस्यकतासे अधिक भोजन करनेका शरीर पर वहुत बुरा परिणाम होता है। यदि पहला भोजन न पचा हो, पेटमें मौजूद ही हो और ऊपरसे एक वार और भोजन कर लिया जाय तो निश्चय ही शरीरको उसका वहुत बुरा परिणाम भोगना पडेगा। आरम्भके पृष्ठोंमे एक स्थान पर वतलाया जा चुका है कि सभ्य देशोंमें प्रत्येक तीन घंटेके वाद भोजन करनेकी प्रथा है । भारतवासी भी दिनमे कमसे कम तीन चार वार अवश्य ही भोजन और जलपान करते हैं, पर वहुत अधिक भोजन करनेका यह रोग हालका ही है। आजसे डेढ दो हजार वर्ष पहले संसारके किसी भागके निवासियोंको इतना अधिक खानेकी लत नहीं थी। उन दिनों सभी देशों और जातियोंके लोग इस उन्नत और सभ्य-कालकी अपेक्षा स्वास्थ्यके प्राकृतिक नियमोका कहीं अधिक पालन करते थे। वे सदा खुली हवामे रहते थे, वहुत सा परिश्रम और लंवी यात्राये करते थे, और जव तक अच्छी तरह भूख न लगती थी तव तक भोजन न करते थे। वल्कि यदि यह कहा जाय कि वे एक वारका किया हुआ भोजन पहले खूव परिश्रम करके पचा लेते थे, तव दूसरी वार भोजन करते थे तो अधिक उत्तम होगा। प्राचीन भारत, चीन, मिस्र, रोम और यूनान आदि सभी देशोके प्राचीन निवासी यह वात भली भाँति समझते थे कि कव, कैसा और कितना भोजन करना चाहिए। पर आजकलकी सभ्यता, शिक्षा और उन्नतिने जहाँ हमे वहुतसे लाभ पहुँचाये हैं वहाँ स्वास्थ्यसम्वन्धी वहुत कुछ हानि भी पहुँचाई है। प्राचीनकालमे लोग अधिक परिश्रम भी करते थे और तरह तरहके कष्ट भी वहुत सहजमें सह लेते थे। पर आज कलकी सभ्यताने लोगोंको वहुत ही सुकुमार और आराम-तलव वना दिया है। इस सुकुमारता और आराम-तलवीका यथेष्ट फल भी लोगोंको भोगना पड़ता है । यह फल सैकडो वल्कि हजारों तरहके नये नये रोगोंके रूपमे प्रकट होता है।

ससारके अधिकाश प्राचीन निवासी दिन रातमे केवल एक वार सन्ध्याके समय भोजन किया करते थे। दिन भर अपने [illegible] लगे रहते थे, भरपूर परिश्रम करते थे और तव सन्ध्याके समय परिवारके सव लोग एकत्र होकर

आनन्दपूर्वक भोजन करते थे। दिन भर कुछ न खाने और खूब परिश्रम करनेके कारण उन्हें बहुत अच्छी तरह भूख लगती थी और उस समय वे लोग जो कुछ खाते थे वह अच्छी तरह पचा लेते थे। उनका रूखा-सूखा, हलका और थोड़ा भोजन उनके शरीरके पोषण और बलवृद्धिके लिए यथेष्ट होता था,-रोग, आलस्य या विकार आदि उत्पन्न करनेके लिए उसका कोई अंश बच ही न रहता था। भोजनके उपरान्त संगीत, नृत्य, और हास्यविनोद आदिका आरम्भ होता था और यही सब बातें उन दिनों आज कलके सुलेमानी नमक और हिंगाष्टककी गोलियोंका काम देती थीं। कुछ जातियोंमें केवल दिनके समय ही खानेकी प्रथा थी। उन लोगोंका मुख्य भोजन आठ पहरमे केवल एक बार होता था और वह भी उतनी ही मात्रामें, जितनी मात्रामें आज कलके लोग 'जलपान' करते हैं।

यद्यपि प्रकृति और प्रवृत्तिका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, तो भी अभ्यास एक ऐसी चीज है जो सबको और फलत प्रवृत्तिको भी दबा लेती है। आप दिन भरमे पसेरी भर अन्नका भी सत्तानाश कर सकते हैं और डेढ पाव या आध सेरमे भी आपका निर्वाह बहुत मजेमें हो सकता है। इसमें आवश्यकता है केवल अभ्यासकी। यदि आप आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका अभ्यास करेंगे अवश्य ही आपकी भूखसम्बन्धी प्रवृत्ति और सहज-बुद्धिका थोड़े समयमें नाश हो जायगा और आप उस अभ्यासके वशीभूत हो जायँगे। यदि बहुत ही छोटी अवस्थाके दो बालक भिन्न भिन्न दाइयोंको दे दिये जायँ और उनमेंसे एक दाई बहुत थोड़ी थोड़ी देरके बाद दूध पिलाती रहे और दूसरी नियमित रूपसे दो दो या तीन तीन घंटोंके बाद दूध पिलाया करे तो निश्चय है कि पहली दाईवाला बालक—चाहे बीमार ही क्यों न हो जाय—हर दम दूधके लिए रोया करेगा, पर जिस बालकको नियमित रूपसे छ या आठ बार दूध पिलाया जायगा उसे सातवीं या नवीं बार दूध पिलाना भी बहुत कठिन हो जायगा। इसका कारण यही है कि अभ्यासके कारण उसकी प्रवृत्ति, इच्छा और सहज बुद्धिका नाश हो जायगा, और इस नाशका परिणाम सदा घातक और अत्यन्त हानिकारक ही होगा। उसका स्वास्थ्य सदा बिगड़ा रहेगा और वह कभी शारीरिक सुख न भोग सकेगा।

बहुधा हम लोग देखा देखा करते हैं कि नागरिकोको देहातियोका स्वास्थ्य देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। नागरिक बहुतसा घी—चीनी, पूरी—पक्वान्न, मेवा-

मिठाई, मास-मछली और पूआ-पकोड़ी खाया करते हैं, पर सदा रोगी और दुर्वल ही वने रहते हैं। लेकिन देहातवाले वाजरे, जौ और मकईकी सूखी रोटी खाकर इतने नीरोग और हृष्ट पुष्ट वने रहते हैं कि यदि वे चाहे तो दो एक नागरिकोंको वड़े आनन्दसे वगलमें दवाकर कोस दो कोसका चक्कर लगा सकते हैं। इसका कारण यही है कि वे स्वच्छ वायुमे रहकर इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका सारा भोजन पच जाता है और दूसरे भोजनके समय तक उन्हें खूव गहरी भूख लग जाती है। एक देहाती प्रात काल चार वजे उठकर अपनी गौओं-भैंसोंके सानी-पानीका सव प्रवन्ध करेगा और ग्यारह वारह वजेतक या तो एकाध वीघा खेत जोतकर रख देगा और या घी दूध, मक्खन, खोआ आदि वेचनेके लिए चार पॉच कोसके किसी शहरका चक्कर लगा आवेगा। शहरमे ही वह थोडेसे भुने दाने खाकर पानी पी लेगा और अपने घर पहुँच कर थोडी देर तक सुस्तानेके वाद फिर किसी शारीरिक परिश्रममें लग जायगा। ऐसी दशामें सन्ध्या या रातके समय उसे खूव तेज भूख लगना वहुत ही स्वाभाविक है और तेज भूख लगने पर जो कुछ खाया जायगा वह अवश्य ही वहुत अच्छी तरह पच कर हमारे शरीरमे लगेगा और हमारे अगप्रत्यगको पुष्ट करेगा। शहरके रहनेवाले सवेरे उठते ही स्नान आदिसे निश्चिन्त होकर जलपान पर टूटेंगे, मानों रात भर उन्होने चक्की ही पीसी हो। जलपानके उपरान्त वे हाथमें या तो ताश, अखवार या किताव आदि उठा लेगे और या अपने मकानके नीचेवाली अपनी दूकान पर जा वैठेंगे। ग्यारह वजे आप यह कहते हुए उठेंगे कि आज कुछ भूख तो नहीं मालूम पडती, पर चलो खा ही आवें, नहीं तो रसोई ठंढी हो जायगी। नौकरीपेशा लोग ज्यो त्यों करके इस विचारसे पेट खूव कस लेगे कि अव दिन भर तो कुछ मिलेगा ही नहीं और चटपट कपडे पहन कर इक्के या ट्रामवे पर घसिटते हुए कचहरी या दफतरमे पहुॅच जाँयगे। दिन भर उनके हाथमें खाली कलम रहेगी और वह भी वडा भारी वोझ मालूम पडेगी। अमीर लोग दिन भर तो तकियों और गद्दियोंमें गडे हुए पड़े रहेंगे और सन्ध्या समय गाडी पर सवार होकर अपने वदले घोडोंसे थोडा शारीरिक परिश्रम करवाके निश्चिन्त हो जायॅगे। इन सभी लोगोंको सवेरेके जलपान और दोपहरके भोजनके अतिरिक्त सन्ध्याका जल-पान और रातका भोजन भी अवश्य ही चाहिए। यदि दो पह-

रके भोजनके वाद कुछ फल और रातके भोजनके उपरान्त थोड़ा दूध मिल जाय तो उसके लिए भी पेटमें जगहकी कमी नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर शहरवाले अपना मन न मसोसेगे तो और क्या करेंगे ? आपको नगरोमें जो दुवले पतले, जन्मरोगी और धँसी हुई आँखोवाले हजारो लाखो दूकानदार, फेरीदार, मुशी, शिक्षक, वकील और छात्र आदि मिलेगे उनके शारीरिक कष्टका कारण भीमसेनी भोजनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इन शारीरिक कष्टोंसे वहुत ही सहजमें छुटकारा पानेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि मनुष्य अपना भोजन धीरे धीरे कम और परिमित करता हुआ दिन रातमे केवल एक वार भोजन करनेका अभ्यास डाले। यह अभ्यास अधिकसे अधिक एक मासमें हो जायगा और जव एक दो मासमें वह केवल एक वार भोजन करनेके गुण वहुत अच्छी तरह समझ लेगा तव नियमित भोजनके अतिरिक्त उसे अमृततक पिलाना कठिन ही नहीं वल्कि असम्भव सा हो जायगा। दिन रातमें केवल एक वार भोजन करनेवाला मनुष्य कभी आवश्यकतासे अधिक खा ही नहीं सकता। उसके गलेके नीचे उतना ही भोजन उतरेगा, जितना उसका पक्वाशय चौवीस घटोंमे पचा सकेगा। भारतवर्षमें ऐसे सैकडो हजारों आदमी मिलेंगे जो व्रत रूपमे केवल एकाहार करते है। ऐसे लोग देखनेमें स्वभावत प्रसन्नचित्त, शरीरसे हृष्टपुष्ट और सात्विक प्रकृत्तिके होंगे। निश्चित समयको छोड़कर और कभी कुछ खानेकी उनकी प्रकृति ही न होगी। क्यों ? इसी लिए कि वे प्रकृतिके अनुकूल आचरण करते है। वे कभी रोगी नहीं होते। क्यों ? इसी लिए कि वे अपने पेटकी मशीन कभी व्यर्थ नहीं चलाते।

जो लोग दिन रातमें केवल एक वार भोजन करना चाहते हों उनके लिए भोजनका सवसे अच्छा समय सन्ध्या है। यह एक वहुत ही साधारण वात है कि पेट भरे होने पर न तो परिश्रम होता ही है और न परिश्रम करना उचित ही है। दिनके समय मनुष्यको वहुत कुछ शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। ऐसी दशामें दिनके समय किसी प्रकारका भोजन न करके केवल रातके समय भोजन करना वहुत ही श्रेष्ठ और लाभदायक है। एक वार जव अनुभवसे दिनको भोजन न करनेके गुण मालूम हो जाँयगे तव फिर कभी किसी तरहकी चीज पर आदमीका मन ही न चलेगा। वयस्क लोग एक मासमें

बहुत अच्छी तरह इसका अभ्यास कर सकते हैं और बालकोंको दस वर्षकी अवस्थातक सहजमें इसका अभ्यास डाला जा सकता है। डा० लिंकन नामक एक विद्वान् अपने बालकोको दिनमे कभी किसी प्रकारकी चीज खानेके लिए नहीं देते थे और प्राय कहा करते थे कि विना दिन भर काम किये भोजनकी इच्छा करना ठीक वैसा ही है, जैसा कि किसी कारीगरका विना दिन भर काम किये पहले ही अपनी मजदूरी माँगना।

मनुष्योंको बहुतसे रोग ऐसे होते हैं, अधिक भोजनके अतिरिक्त जिनका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। ऐसे लोगोंको जो अधिक भोजन करके ही अपने शरीरको रोगी बनाते हैं दिन रातमें केवल एक वार भोजन करनेसे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है। एक वार भारतमें एक पादरी महाशय ज्वरसे बुरी तरह पीडित हुए। सात महीने तक डाक्टरोने उनका शरीर दिनमें तीन वार भोजन, छ वार औषध और कदाचित् इससे भी अधिक वार दूध, और व्हिस्कीसे खूब भरा। यहाँ तक कि अन्तमे वे सूख कर काँटा हो गये और विवश होकर अपने देश अमेरिकाको चले गये। वहाँ सौभाग्यवश उनकी भेट एक योग्य उपवासचिकित्सकसे हो गई। उपवास-चिकित्सकने उन्हें दिन रातमें केवल एक ही वार भोजन देना आरम्भ किया और थोडे ही दिनोंमें उनकी सारी शिकायते दूर हो गई। चार महीनेके अन्दर ही वे बहुत हृष्टपुष्ट हो गये और तौलमें आध मन बढ गये। वहाँसे नीरोग होकर वे फिर भारत चले आये और खूब परिश्रम करके दिन रातमें केवल एक ही वार भोजन करके रहने लगे। इस प्रकार वे चार वर्षों तक यहाँ रहे और इस बीचमें वे या उनके परिवारके लोग भी कभी बीमार नहीं हुए।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशनमें एक वार डा० रैवेग्लैटीने एक ऐसी बालिकाका हाल सुनाया था, जिसकी अवस्था चार वर्षकी थी और जिसके दाहिने घुटनेमें भयकर Tuberculosis हो गया था। उस बालिकाको दिन रातमें चार वारके बदले केवल एक वार भोजन दिया जाने लगा। सुबह और शामको उसे थोड़ा थोड़ा दूध भी दिया जाता था। उस बालिकाको और भी कई भयकर रोग थे। पर सवा वरसमें उसके सब रोग समूल नष्ट हो गये और वह वजनमें चौदह सेरसे बढकर उन्नीस सेर हो गई। इस अवसर पर यह बात ध्यान रखने

क्रिया नहीं है, जिससे कि उसकी समाप्ति पर ही भूख लग आवे । हजारो ऐसे आदमी हैं, जिन्होंने अपना प्रातःकालका जलपान छोड़ दिया है और थोड़े ही दिनों बाद जिन्हें कभी उसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी । यदि जलपान आवश्यक होता तो यह बात कभी न होती, क्योंकि प्रकृति अपनी आवश्यकताको पूरा किये विना कभी नहीं मानती । यह कदापि सम्भव नहीं है कि वह अपनी किसी आवश्यकताको विना पूरा किये ही अथवा थोड़े भोजन पर ही हमारे शरीरको बिलकुल ज्योंका त्यों बनाये रक्खे । जो जलपान तुम विना आवश्यकताके और केवल अपने अभ्यासके कारण करते हो, वह बड़ी सरलतासे तुम्हे उसके छोड़ देनेकी आज्ञा दे सकती है । पर यदि तुम उसकी अवश्यकताओंको पूरी तरहसे पूरा न करोगे तो आगे चलकर तुम्हे उसका फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा ।

" जलपान करना छोड़ दो और जब तक खूब तेज भूख न लगे तब तक कभी कुछ मत खाओ । जब तुम उस भूखके आसरे रहोगे तब अवश्य ही वह अपने समय पर उचितरूपमे मालूम पड़ेगी । उस अवसर पर तुम स्वयं ही यह निश्चय कर सकोगे कि क्या चीज और कितनी खानी चाहिए । जब तक भोजनकी पूरी पूरी आवश्यकता न हो तब तक कोई भोजन बल-वर्द्धक और स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता । वास्तविक आरोग्यता प्राप्त करनेके लिए खूब तेज भूख, खूब स्वादिष्ट मालूम होनेवाले सादे भोजन, खाद्यपदार्थको बहुत अच्छी तरह चबाने और पाचनके समय मनके खूब शान्त रहनेकी आवश्यकता होती है ।

" विना जलपान किये अपने काम पर जाओ, दोपहरके भोजनके समय तुम्हें खूब तेज भूख लगेगी । इतनी तेज भूख लगेगी कि यदि तुम भोजनसे पहले किसी प्रकारकी शक्ति-वर्द्धक औषध खानेके अभ्यस्त होगे तो वह औषध खाना भूल जाओगे । तुमको भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ेगा और भोजनके उपरान्त तुम्हारी तबीयत इतनी अच्छी जान पड़ेगी कि तुम्हे किसी तरहका पाचक या चूरन खानेकी भी आवश्यकता न रह जायगी । कितनी सीधी बात है । जबतक वास्तविक और खूब भूख न लगे तबतक कुछ मत खाओ, चाहे सारा दिन सप्ताह या महीना भी क्यो न बीत जाय । उपवास करना बहुत ही सुरक्षित है, उसमें किसी प्रकारकी हानिकी कोई सम्भावना नहीं है । "

यदि परिवारमें एक मनुष्य प्रात कालका जलपान करना छोड़ देगा तो उससे होनेवाले लाभोंको देखकर सम्भवत परिवारके और लोग भी बहुत ही शीघ्र अपना अपना जलपान छोड देंगे। जलपान न करनेवालोका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, उन्हें जलदी कभी किसी तरहकी शिकायत नहीं होती। अमेरिका-वालोकी देखादेखी युरोपवाले भी जलपान न करनेके गुण समझने लगे हैं। अभी हालमे इंग्लैण्डमें एक स्वास्थ्यवर्द्धिनी सभा स्थापित हुई है जिसका प्रधान उद्देश्य जलपानकी प्रथा रोकना है। जिस दिन उस सभाकी स्थापना हुई उस दिन उसमें नगरके बहुत बड़े बडे अधिकारी, रईस और विद्वान् इकट्ठे हुए थे। यह सभा इंग्लैण्डके मैंचेस्टर नगरमें हुई थी। उस अवसर पर वहाँके 'मेंचेस्टर गार्डियन' नामक प्रसिद्ध पत्रने लिखा था-"आज मैंचेस्टर नगरमे पहले दिनोंकी अपेक्षा सैकडो जलपान कम हो जायँगे और यहाँकी स्वास्थ्यसभा थोडे ही घटोंमे अपनी स्थापनाका शुभ फल देख लेगी। सम्भवत उसकी देखादेखी 'जलपान' का निषेध करनेवाली सैकड़ो सभाये स्थापित होगी। लोगोंका बहुत सा समय केवल जलपान तैयार करनेमें ही लग जाता है। स्वास्थ्य सुधारने, आयु बढाने और सुखी रहनेके लिए इससे अच्छा और कौनसा काम हो सकता है? तरह तरहके रोगोसे बचने और प्राप्त रोगोंसे मुक्त होनेका इससे अच्छा और कौनसा उपाय हो सकता है? जातिके लिए इससे अधिक उपकारक और कौन सी बात हो सकती है? यदि प्राकृतिक नियमोका पालन किया जाय और अपने शरीरको अवसर दिया जाय तो अवश्य ही वह अपनी सारी मरम्मत आप ही कर लेगा। और यह प्रथा कोई नई नहीं है, केवल पुरानी प्रथाकी पुनरावृत्ति है। यह सर्व-रोगनाशक कोई पेटेंट दवा नहीं है, बल्कि हमारे जीवनकी रक्षाका सर्वोत्तम उपाय है। इस नये उपायसे उन पुराने दुष्ट उपायोंका नाश होगा, जिनके कारण शरीर-रक्षाके बहानेसे जातिको तरह तरहके कठोर दण्ड सहने पड़ते हैं।"

लडनके एक दिग्गज डाक्टरने-जो इंग्लैण्डके कई विशाल अस्पतालोंमें चिकित्सकका काम कर चुके है-रोगोंके कारणोंके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमे आपने एक स्थल पर लिखा है-"अमेरिकाके डा० डेवीने एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका मुख्य तात्पर्य यह है कि कुछ दिनों तक पूरा पूरा उपवास करनेसे सैकडो तरहके रोग नष्ट हो जाते हैं और

वहुतसे साधारण रोग केवल जलपान छोड देनेसे ही छूट जाते हैं। यदि पक्वाशयको सोलह घटों या उससे अधिक समय तक शान्तिपूर्वक अपना काम करने दिया जाय तो वहुतसे रोगोसे मुक्ति हो सकती है। उस पुस्तकमें इस क्रियासे अच्छे होनेवाले वहुतसे लोगोंके विवरण दिये गये हैं। मैं जहाँ तक समझता हूँ, उनका तर्क अकाट्य है और कथन विलकुल सत्य है।

"यह परिणाम निकालकर मैंने स्वय अपने ऊपर उसका अनुभव आरम्भ किया और मैंने जलपान छोड कर दिनमें केवल दो वार भोजन करके रहना आरम्भ किया। जव मैंने सवेरे और सन्ध्याका जलपान छोड दिया तव दोपहरको एक वजे मुझे वहुत अच्छी तरह भूख लगने लगी। उस समय अच्छी तरह खानेके वाद रातको आठ वजे तक कभी कुछ खानेकी मेरी इच्छा न होती थी। इसका परिणाम ठीक वैसा ही हुआ, जैसा डा० डेवीने अपनी पुस्तकमें वतलाया है। प्रात काल मेरी तवीयत वहुत प्रसन्न रहने लगी और मैं वहुत अच्छी तरह शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेके योग्य हो गया। एक वजे मुझे ऐसी तेज भूख लगती थी जैसी पहले कभी वरसोंसे न लगी थी। जव मैं जलपान किया करता था तव उसके उपरान्त मुझे वहुत सुस्ती मालूम हुआ करती थी और उसके घंटे दो घंटे वाद तक अच्छी तरह मानसिक परिश्रम न हो सकता था। इस प्रकार मैं दिनमें दो वार भोजन करके वहुत अच्छी तरह रहने लगा।"

यह मिथ्या भ्रम मनसे निकाल डालो कि अपना स्वास्थ्य और वल वनाये रखनेके लिए हमको दिनमें तीन वार भोजन करना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्यके लिए दिन रातमे दो वार भोजन करना यथेष्ट है। वहुत अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवाले और युवावस्थाके लोग भी वडे आनन्दसे दिन रातमें केवल दो वार भोजन करके रह सकते हैं। इससे उनका स्वास्थ्य सुधरेगा तथा वल वढेगा। वहुधा लोग सवेरे स्नान आदिसे निवृत्त होते ही विना भूख लगे जवरदस्ती कुछ न कुछ खाही लेते हैं। शरीर पर इस जवरदस्तीका वहुत ही वुरा परिणाम होता है। यदि यह अभ्यास छोड़ दिया जाय और प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण किया जाय—केवल उसी समय भोजन किया जाय जव कि खूव तेज भूख लगे—तो संसारसे वहुतसे रोग और फलत चिकित्सकोंके चिकित्सालय आदि भी कम हो जायँ।

खान-पानका विचार ।

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपने खानपानका विचार रखना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि हम जो कुछ खाते या पीते हैं उसका प्रभाव केवल हमारे शारीरिक सगठन पर ही नहीं पडता, बल्कि हमारे आचार विचार और स्वभावके साथ भी उसका बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध होता है। ससारमें जितने जीव हैं प्रायः उन सबके लिए कुछ न कुछ विशिष्ट प्राकृतिक भोजन निश्चित होता है और निश्चित भोजनको छोडकर वह जीव और किसी प्रकारका पदार्थ नहीं खाता। आप किसी शाकाहारी पशुको लाख प्रयत्न करने पर भी कभी किसी प्रकारका मास या कीडे-मकोडे आदि नहीं खिला सकते। किसी मासाहारी पशुको फल आदि खिलानेका प्रयत्न भी कभी सफल नहीं हो सकता, पर ससारके समस्त जीवोंमें अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाला मनुष्य अपने खान-पानके सम्बन्धमे कभी किसी प्रकारका विचार नहीं रखता। बहुधा उसे जब जो कुछ मिलता है वह सब खा लेता है। तरह तरहके विषाक्त और मादक द्रव्य और झींगुर, बिल्ली, कुत्ते, चूहे आदि सभी उसके लिए खाद्य हैं। ससारमें कठिनतासे कोई ऐसा पदार्थ मिलेगा जिसे मनुष्य किसी रूपमें भी अपने पेटमें न उतार सकता हो। यही नहीं, वह अपने खानेके लिए नित्य तरह तरहके नये पदार्थोंका अन्वेषण और आविष्कार किया करता है। पर खान-पान सम्बन्धी यह अत्याचार मनुष्य-जातिके लिए कितना हानिकारक और कितना दुखदायक है, इसका विचार करनेका कष्ट बहुत ही कम लोगोंने उठाया होगा।

मोटे हिसाबसे ससारमे दो प्रकारके खानेवाले लोग माने जाते है, एक शाका-हारी और दूसरे मासाहारी। शाकाहारियोंके सम्बन्धमें किसीको कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि फल और शाक आदि मनुष्यका निसर्ग-सिद्ध भोजन है। मासके कट्टरसे कट्टर पक्षपाती भी चाहे 'केवल शाकाहार' की निन्दा भले ही करें, पर 'शाकाहार' पर वे किसी प्रकारका आक्षेप नहीं कर सकते। क्योंकि प्रत्येक मासाहारी अवश्य ही शाकाहारी भी होता ही है। आक्षेप करने योग्य केवल मासाहारी ही है। अब देखना यह है कि मासाहारियो पर जो आक्षेप किये जाते हैं वे वास्तवमें कहाँतक सत्य हैं।

कदाचित् यहाँ इस बातको विशेष रूपसे सिद्ध करनेकी कोई अवश्यकता न होगी कि मास खानेवालोंकी प्रकृति बहुधा उग्र उद्दण्ड और हिंसक हो जाती है और फलत वे लोग क्रूर, निरंकुश और अत्याचारी हो जाते हैं। मासाहारियोंके कारण दूसरे मनुष्यों और जीवोंको बहुत कुछ अत्याचार सहना और पीडित होना पडता है। उदाहरणस्वरूप शेर और गौ, बाज और तोते, पठान और वैष्णव उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि अत्याचार और बल-प्रयोग आदिकी गणना गुणोंमें की जा सकती हो तो अवश्य ही मासाहार भी उत्तम और प्रशसित हो सकता है, अन्यथा वह इसके विरुद्ध प्रमाणित होगा। कुछ लोग मासाहारके पक्षका समर्थन करते हुए यह कहा करते हैं कि मनुष्यको अपने अधिकारोकी रक्षा करने और अपना अस्तित्व बना रखनेके लिए ही मासाहारी होना बहुत आवश्यक है। इसी कोटिके एक सज्जनने एक बार अपने पक्षके समर्थनके लिए लेखकको किसी आर्ष ग्रन्थका इस आशयका एक मत्र सुनाया था कि सृष्टिका यह परस्परा-गत नियम है कि 'चार पैरोवाले दो पैरोवालोंको खायँ और दो पैरोवाले बिना हाथ-पैरवालोंको खायँ।' तात्पर्य यह कि प्रत्येक सबल अपनेसे निर्बलको खा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंमे भी इस सिद्धान्तके अनुयायियोंकी कमी नहीं है। वे लोग दुर्बलताको महान् पाप समझते हैं और उत्तरोत्तर सशक्त बनना अपना परम धर्म्म और कर्तव्य समझते हैं। प्रत्येक विचारवान् बिना किसी प्रकारका आगा पीछा किये राजनीतिक और सामाजिक आदि कारणोसे यह सिद्धान्त तुरन्त स्वीकार कर लेगा और उसकी उपयोगितामे कभी किसी प्रकराका सन्देह नहीं करेगा, पर यदि कोई मासाहारी इस सिद्धान्तको अपनी पाशविक वृत्तिके समर्थन और पोषणके लिए सामने रक्खेगा तो विचारवानोंको अवश्य ही उस पर दया और हँसी आवेगी। अपना अस्तित्व बनाये रखने और राजनीतिक अधिकार रक्षणके लिए अधिकसे अधिक बलकी ही आवश्यकता हो सकती है। क्रूर, भीषण और अत्याचारी प्रकृतिसे उसमे क्या सहायता मिलेगी? कोई मासाहारी दावेके साथ यह बात नहीं कह सकता कि उसमें किसी शाकाहारीकी अपेक्षा अधिक बल है। शारीरिक बल बहुधा शारीरिक शक्तियोंके निरन्तर और सदुपयोगसे ही बढता है। प्रत्येक मनुष्य जिसके आचार आदि परिमित हों बलिष्ठ हो जाता है। मासाहारसे शरीरकी बलवृद्धिमे कभी किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिल सकती, बल्कि

उलटे उससे मनुष्यका शरीर तरह तरहके भयंकर भयंकर रोगोंका घर हो जाता है और वह उसकी मृत्युका कारण होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि मांस मनुष्यका स्वाभाविक भोजन नहीं है।

भारत सरीखे दरिद्र देशोंमें कुछ लोग मांस मछली खाना इसलिए उपयुक्त समझते हैं कि उसमें दाम कम लगता है। मांस तो अपेक्षाकृत सस्ता पड़ ही नहीं सकता, रही मछली, सो उससे भी सस्ते दामके शाक आदि प्रायः सभी स्थानोंमें मिलते हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह बात भी मान ली जाय कि मांस और मछली बिलकुल मुफ्त मिलती है और अन्न, फल और दूध आदिमें पैसे खर्च करना लग जाती है तो भी मांसाहारका समर्थन नहीं होता। क्या कोई पदार्थ केवल इसी विचारसे ग्राह्य सिद्ध हो सकता है कि उसमें हमारा दाम नहीं लगता? कदापि नहीं। किसी पदार्थको ग्राह्य सिद्ध करनेके लिए उसमें प्रधानतः कुछ विशिष्ट गुणोंकी आवश्यकता होती है, मूल्यका प्रश्न तो बहुत ही गौण है। साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि मांस मछली आदि कहाँ तक सस्ती पड़ती है। पर उसके सस्तेपनका विचार करनेके समय डाक्टरोंकी उस फीस और औषधियों आदिके मूल्यको न भूल जाना चाहिए जो मांसाहारके परिणामस्वरूप हमारी गाँठसे निकल जाता है। यदि मांसाहारके कारण होनेवाले भीषण और प्राणघातक रोगोंका भी विचार कर लिया जाय तो सम्भवतः संसारमें इससे बढ़कर महँगा सौदा और कोई न दिखाई देगा।

मांसाहारियोंने अपने पक्षके समर्थनके लिए जहाँ और तरह तरहकी युक्तियाँ लड़ाई हैं वहाँ मनुष्यके शारीरिक और विशेषतः भौतिक संगठनकी भी बहुत कुछ आड़ ली है। पर शरीर-शास्त्रके आधुनिक बड़े बड़े विद्वानोंने परीक्षा और अनुभवसे यह बात सिद्ध कर दी है कि शरीर-संगठनके विचारसे मनुष्य शाकाहारी ही है, मांसाहारी नहीं। इससे अतिरिक्त लेखकने एक बार स्वर्गीय पं० चुन्नीलाल शर्माको-जिन्होंने शायद बौद्ध धर्मसे मिलता जुलता बेरलीमें 'निर्विकल्प' नामक एक नया सम्प्रदाय खड़ा करनेका विचार किया था-अपने व्याख्यानमें यह कहते सुना था कि संसारका कोई जीव वास्तवमें और स्वभावतः मांसाहारी नहीं होता; यहाँ तक कि शेरनीका बच्चा भी जन्म लेते ही पहले अपनी माताका दूध पीता है, बकरी या भैंसेका मांस नहीं खाता। पर ये सब विषय अपेक्षाकृत अधिक

गूढ हैं और इन पर विचार करना वहुत वडे वडे विद्वानोका ही काम है। पर मानवशरीर पर पडनेवाले मासके प्रभाव आदिका विचार वहुत कुछ वादविवाद और अनुभव आदिके कारण इतना सरल, स्पष्ट और सिद्ध हो गया है कि हम विना किसी प्रकारकी कठिनताके उसे अपने पाठकोके सामने रख सकते हैं।

जो पदार्थ दाँतोंसे अच्छी तरह कुचल कर चवाया और पीसा न जा सके वह मनुष्यके लिए कदापि खाद्य नहीं हो सकता। मासमें जो रेशे होते हैं वे भी ऐसे ही होते हैं और फलत वह खाये जानेके योग्य नहीं होता। प्रश्न हो सकता है कि जो पदार्थ मनुष्यके खाने और पचाने योग्य नहीं है उसके खानेकी प्रथा कव, क्यों और कैसे चली? इसका उत्तर इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि वहुत प्राचीन कालमें वहुत ही विवश होने पर कुछ लोगोंने मास खाना आरम्भ किया होगा और तभीसे वह खाद्य पदार्थोंमे गिना जाने लगा और वास्तवमें पराकाष्ठाकी विवशताके अतिरिक्त मास सरीखे घृणित पदार्थके खानेका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। वहुत सम्भव है कि मनुष्यको मांस खानेकी कुछ शिक्षा हिंसक पशुओं आदिसे भी मिली हो। आज कल जव कि मनुष्यको संसारके कोने कोनेमें उत्तम वानस्पत्य और स्वाभाविक भोजन मिल सकता है तो कोई कारण नहीं है कि मनुष्य ऐसे अस्वाभाविक और हानिकारक पदार्थका खाना वरावर जारी रक्खे। मांसके अस्वाभाविक भोजन होनेका सवसे अच्छा प्रमाण यह है कि कभी कोई वालक या वयस्क जिसने कभी मास न खाया हो पहले पहल विना वहुत अधिक अरुचि प्रकट किये कभी उसे खाना आरम्भ नहीं कर सकता। मांस खानेका आरम्भ अरुचिको दवाकर अपनी प्रकृति और इच्छाके विरुद्ध करना पड़ता है। मांस खाना मनुष्यके लिए कितना अधिक हानिकारक है, इसके प्रमाण-स्वरूप यदि वडे वड़े डाक्टरोंकी सम्मातियाँ एकत्र की जायँ तो शायद वहुत वडा पोथा वन जायगा। वडे वडे वैज्ञानिकोने रासायनिक परीक्षासे यह वात सिद्ध की है कि मांसमे शरीरको हानि पहुँचानेवाले द्रव्य तो वहुतसे होते हैं, पर कोई ऐसा पौष्टिक द्रव्य नहीं होता जो हमें वनस्पति-जन्य खाद्य पदार्थोंमें न मिलता हो। सव प्रकारके अन्नोंमें पौष्टिक द्रव्य मांसकी अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं। परीक्षाद्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शाकाहारी लोग मासा-

हारियोंकी अपेक्षा अधिक वलवान्, अधिक परिश्रमी, अधिक शान्त और अधिक विचारवान् होते हैं । ससारमें अव तक जितने वडे वड़े महात्मा, दार्शनिक, ऋषि और विद्वान् हो गये हैं उनमेंसे वहुत ही थोड़े ऐसे निकलेगे जो मांसाहारी हों; और उनमें भी मासके पक्षपातियोंकी सख्या तो और भी कम होगी ।

—

मासमें यदि अन्नकी अपेक्षा कोई विशेपता होती है तो वह उन उत्तेजक द्रव्योंकी अधिकता है, जो प्राय सव प्रकारके मादक द्रव्योंमें हुआ करते हैं । जिस प्रकार मादक द्रव्य हमारे शरीरमें पहुँचकर उसकी सजीवनी-शक्तिको अपने साथ युद्धमें प्रवृत्त करके उसे चचल वना देते हैं, ठीक उसी प्रकारका प्रभाव हमारे शरीर पर मांस-भक्षणका भी होता है । इसलिए मांस भी हमारे लिए उतना ही हानिकारक है जितना कोई मादक द्रव्य । यदि मांसमें वल वढानेकी शक्ति होती तो मांसाहारी शेरको शाकाहारी अरने भैंसे या ओरग-ऊटंगसे अपनी दुर्दशा करानेकी नौवत न आती । जिस माससे मनुष्यको क्षयी, कण्ठमाला, पक्षाघात तथा और तरह तरहके सैकडों भयकर फोडे हो सकते और होते हैं वह मांस क्या कभी वलवर्द्धक अथवा कमसे कम खाद्य ही हो सकता है? हृद्रोगोंकी उत्पत्तिकी भी, मांस खानेमे वहुत अधिक सम्भावना हुआ करती है । यूरिक एसिड नामका एक विपैला द्रव्य होता है जो मूत्रके साथ मनुष्यके शरीरके वाहर निकलता है । मास खानेवालोंके मूत्रमें यह एसिड वढ़कर दुगुना और तिगुना तक हो जाता है, जिससे सिद्ध होता है कि मास खानेका गुरदों पर भी वहुत वुरा प्रभाव पड़ता है । मास खानेसे रक्त-सचालनमे भी वडी वाधा पहुँचाती है । यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें आजकल कैन्सर नामका एक वहुत भयकर फोडा फैल रहा है जिससे लाखो मनुष्योंके प्राण जाते हैं । वहुत वडे वड़े डाक्टरोंने परीक्षा और अनुभवसे यही निश्चित किया है कि इस भयकर फोड़ेका कारण मासाहारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वहाँ इस भयकर फोडेको रोकनेके लिए मासकी विक्री तक वन्द करनेके लिए आन्दोलन हो रहा है । तात्पर्य यह कि मनुष्यके लिये मांस खाना अत्यन्त हानिकर और अनुचित है । मांस खाना मानो प्राकृतिक नियमोका उल्लघन करना है । मासमें अनेक प्रकारके कीडे होते हैं जो उसके साथ हमारे पेटमें उतर जाते हैं और हमारा स्वास्थ्य नष्ट कर देते हैं । इसके अतिरिक्त स्वयं मास पूरी तरहसे

नहीं पचता और उसका वहुतसा अश पेटमें ही पडा पडा सडता है । अत जो लोग सदा नीरोग और हृष्ट पुष्ट वने रहकर अपनी पूरी आयु भोगना चाहते हों, उन्हें अन्न फल आदि सात्त्विक, स्वाभाविक और श्रेष्ठ पदार्थोंको छोडकर मास आदि तामसिक, अस्वाभाविक और निकृष्ट पदार्थ कभी न खाने चाहिए ।

मास आदिके वाद शरीरके लिए वहुत ही हानिकारक पर प्रचलित द्रव्योंमें दूसरा नवर मादक द्रव्योंका है । शरीर पर मादक द्रव्योंका जो दुष्परिणाम होता है वह मांसके दुष्परिणामोंसे भी कहीं अधिक स्पष्ट और व्यक्त है, अत उसके लिए वहुत अधिक विवेचनाकी आवश्यकता नहीं है । जिस मनुष्यको यह समझानेकी आवश्यकता पड़े कि मादक द्रव्योंके व्यवहारसे मनुष्यकी आर्थिक, शारीरिक, धार्मिक और नैतिक आदि सभी दृष्टियोंसे वहुत हानि होती है, उससे वढकर अभागा और दुर्वुद्धि शायद ही कोई होगा । मादक द्रव्योका व्यवहार करना अपने शरीर, वुद्धि और वल आदिको जान वूझ कर वेतरह तग करना नहीं है तो और क्या है ? जिस मनुष्यका मस्तिष्क शराव या गॉजेके प्रभावसे चकराया हुआ होगा वह कौनसी उत्तम वात सोचने समझने अथवा करनेमें समर्थ हो सकता है ? किसी अफीमची या शरावीसे कौनसे पुरुपार्थकी आशा की जा सकती है ? तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योसे ससारका सव प्रकारका अपकार ही होता है, उपकार कुछ भी नहीं होता । वहुधा लोग जव कुछ अधिक परिश्रम करनेके कारण थक जाते हैं तव उस समय थकावट उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक द्रव्यका व्यवहार करते हें । पर नशेके उतारके समय कोई उनकी थकावटके उतारका हाल पूछे । उस समय केवल उनकी थकावट ही नहीं वढ जाती, वल्कि उनके शरीरमे वहुत कुछ वेचैनी भी उत्पन्न हो जाती है । थकावट दूर करनेके लिए मादक द्रव्योका व्यवहार करना वैसा ही हे, जैसा कि जलतीहुई आग वुझानेके लिए उस पर घी या तेल छोडना । जो थकावट केवल थोडासा ठढा जल पीने और कुछ देर तक खुली हवामें टहलनेसे ही दूर हो सकती है, उसे उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक पदार्थका सेवन करना मूर्खता ही है । एक गिलास शराव पी लेनेके उपरान्त दूसरा गिलास पीनेकी इच्छा होगी और उसके वाद वोतल खाली करनेकी नौवत आवेगी । यहॉतक कि अन्तमें नशेका भूत उसे मनुष्यत्वसे एकदम गिरा

देगा। कुछ लोग केवल संग-साथके विचारसे ही मादक द्रव्योंका व्यवहार करने लगते हैं, पर केवल संग-साथके विचारसे ही ऐसे पदार्थोंका व्यवहार करना—जो हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके नाशक हों, जिनसे हमारे अंगोंकी उपयोगिता नष्ट हो और जिनसे हमारे कर्तव्योंमें बाधा पड़े—बड़ी भारी भूल है। कुछ लोग कोई बड़ा काम करनेसे पहले केवल इसी लिए कोई नशा खा या पी लेते हैं कि उसकी सहायतासे उनके शरीरमें खूब फुरती आ जायगी और वे उस कामको शीघ्रता और उत्तमतासे कर सकेंगे। पर हर पाठकको विश्वास रखना चाहिए कि प्रत्येक कार्य जितनी शीघ्रता और उत्तमतासे स्वयं प्रकृति, बिना किसी दूसरी शक्तिकी सहायताके कर सकती है, उतनी शीघ्रता और उत्तमतासे किसी दूसरे पदार्थकी सहायतासे और विशेषतः मादक द्रव्योंके मादक पदार्थोंकी सहायतासे कदापि नहीं कर सकती। इन सब बातोंके अतिरिक्त नशीली चीजोंसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। शराब पीनेवालेका जिगर सड़ जाता है, गाँजा या चरस आदि पीनेवाले पागल हो जाते हैं, अफीमचियोंकी आँतें बेकाम हो जाती हैं और भाँगका आँखों पर बहुत ही नाशक प्रभाव पड़ता है। संसारके जितने मादक पदार्थ हैं, वे सब विष हैं और विष सदा हमारे शरीरके शत्रु ही प्रमाणित होंगे, उनसे किसी प्रकारके हित या कल्याणकी आशा रखना व्यर्थ है।

खान-पानके नियमोंके अन्तर्गत मांस और मादक पदार्थ आदि छोड़ देनेके अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं जिनका ध्यान रखना स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए बहुत आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि जहाँ तक हो सके मनुष्यको सादा, सूखा और हलका भोजन करना चाहिए। इस सम्बन्धमें यह बात सबसे अधिक ध्यान रखने योग्य है कि हमारे शारीरिक संगठनमें उन्हीं पदार्थोंसे सहायता मिलती है जिन्हें हम अच्छी तरह पचा लेते हैं। शेष सब पदार्थ हम चाहे उन्हें कितना ही अधिक पौष्टिक क्यों न समझें हमें कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते। वे तो एक मार्गसे हमारे शरीरमें केवल प्रवेश करते हैं और दूसरे मार्गसे निकल जाते हैं, हमारे शारीरिक संगठनमें उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। इस प्रकार दूधके केवल पीलेनेसे उतना

लाभ नहीं हो सकता, जितना पाव भर या आध सेर दूधके पच जानेसे होता है। अत केवल बल-वृद्धि आदिके विचारसे तरह तरहके पौष्टिक पदार्थोंको बराबर उदरस्थ करते रहनेका फल उल्टा ही होता है। हलके भोजनका विधान इसलिए किया जाता है कि गरिष्ठ भोजनसे पाचन-शक्तिका नाश होता है और अग्नि मन्द पड जाती है। पूरियों और पक्वान्नोंकी अपेक्षा रोटियाँ सहजमें पच जाती हैं और इसी लिए उनसे हमे अधिक लाभ भी पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन रूखा भी होना चाहिए। घी, मखन, पक्वान्न और हलुए आदिसे भी पाचन-शक्ति बहुत मन्द पड जाती है। यही कारण है कि नित्य हलुआ-पूरी खानेवाले भोजनके समय एक बारमें चार पाँच पूरियोसे अधिक नहीं खा सकते, पर सूखी रोटियाँ अथवा भूने हुए दाने खानेवाले उनसे चौगुना और पचगुना भोजन कर जाते हैं। उनके भोजनकी केवल मात्रा ही नहीं बढ जाती, बल्कि उससे होनेवाले लाभका मान भी बहुत कुछ बढ जाता है। रूखा भोजन करनेवाले लोग सदा खूब नीरोग और बलिष्ठ रहते हैं और तर माल खानेवाले दुर्बल होते हैं। तरह तरहके मसालों आदिका भी कभी व्यवहार न करना चाहिए, क्योंकि उनके सयोगसे खाद्य पदार्थोंके स्वाभाविक गुणोका नाश होता है। जहाँ तक हो सके ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो अपने वास्तविक स्वरूपमे हों अथवा जिनमे बहुत ही थोड़ा परिवर्त्तन हुआ हो। किसी पदार्थके प्राकृतिक स्वरूपमें जितना ही परिवर्त्तन किया जायगा उसके गुणोंका उतना ही अधिक नाश भी होगा। दरदरे पीसे हुए गेहूँका व्यवहार करना लोग आजकलकी सभ्यताके जमानेमें भले ही हास्यास्पद समझें, पर इस बातसे कोई समझदार आदमी इनकार नहीं कर सकता कि आटा जितना ही अधिक पीसकर महीन किया और छाना जाता है वह उतना ही गरिष्ठ भी होता जाता है। बिना छाने हुए आटेकी अपेक्षा छाने हुए आटेकी रोटी और छाने हुए आटेकी रोटीकी अपेक्षा बढिया मैदेकी पूरी कही अधिक गरिष्ठ और हानि-कारक होती है। इसी प्रकार दूध जितना औटाया जायगा वह भी उतना ही गरिष्ठ होता जायगा। पदार्थोंका प्राकृतिक रूप ज्यों ज्यों बदलते जाइएगा त्यों त्यों उनके प्राकृतिक गुणोंका भी नाश ही होता जायगा। मनुष्यके लिए दूध तथा फलोंसे बढकर बलकारक और स्वास्थ्यप्रद और कोई पदार्थ हो ही नहीं सकता। पर जो लोग सदा दूध और फलो पर ही न रह सकते हों और दूसरे पदार्थों पर भी

जिनका मन चलता हो उन्हे इस वातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उनका भोजन जहाँ तक हो सके सादा, हल्का और रूखा हो । मनुष्यके स्वाभाविक भोजनकी सवसे अच्छी पहचान यह है कि किसी पदार्थको स्वाभाविक स्थिति या स्वरूपमें देखकर मनुष्यके मनमे उसके खानेकी इच्छा उत्पन्न हो। वढिया सेव, नाशपाती, अमरूद, अगूर, सन्तरे या दूध आदि पर तो मनुष्यका मन सहजहीमें चल जाता है, पर मासके लोथडे रक्खे हुए देखकर मनुष्यको सदा घृणा ही होती है । उपयुक्त और अनुपयुक्त भोजनकी यही सवसे अच्छी पहचाना है। तो भी आजकलके जमानेमें मनुष्यमात्रके लिए केवल फल खाकर और दूध पीकर रहना प्राय असम्भव है। मनुष्यका स्वाभाविक भोजन अन्न भी है, क्योंकि यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो वह भी फलकी कोटिमें ही आ जायगा। अत मनुष्यको फलोंके साथ अन्न भी खाना चाहिए । पर यह अन्न जहाँ तक हो सके वहुत ही कम विकृतरूपमे आया हो और उसमें दूसरी चीजों-का वहुत ही कम योग हो, क्योकि मनुष्यको नीरोग और वालिष्ट वनाये रखनेमें सवसे अधिक सहायता ऐसे ही पदार्थोसे मिल सकती है। छौंके वघारे और तले हुए पदार्थ तो हमारे शरीरके लिए किसी न किसी अशमे हानिकारक ही होंगे।

खान पानके सम्वन्धमे दूसरी सवसे अधिक विचारणीय वात यह है कि मनुष्यको जव तक खूव तेज और खुलकर भूख न लगे तव तक कभी कुछ न खाना चाहिए। यह वात सव लोग स्वीकार करेंगे कि अनावश्यक रूपसे या अनिच्छा-पूर्वक किया हुआ काम सदा हानिकारक ही होता है । भोजनके समय भी इस सिद्धान्तकी सत्यता भूल न जानी चाहिए । भूखका अस्तित्व हमे वतलाता है कि हमारे शरीरको पोपक द्रव्योंकी आवश्यकता है, पर उसका अभाव यही सूचित करता है कि अभी शरीरमें यथेष्ट पोपक द्रव्य उपस्थित हैं। खूव तेज भूख लगने पर हम जो कुछ खायँगे वह हम तुरन्त पचा सकेंगे और इसी लिए उसके द्वारा हमारे शरीरका वल वढेगा। पर यदि हम विना भूखके ही जवरदस्ती कुछ खा लेंगे तो उससे हमारी पाचन शक्ति पर आवश्यकतासे अधिक वोझ पड जायगा और उसके परिणामस्वरूप हमारे शारीरिक वलका नाश ही होगा। खूव तेज भूख लगने पर हम जो कुछ खायँगे वह हमें स्वादिष्ट भी जान पडेगा और

उसीसे हमारे शरीरका पोषण भी होगा । केवल दैनिकचर्य्या समझकर खाया हुआ भोजन न तो खानेमें ही स्वादिष्ट मालूम होगा और न हमारे तनमे ही लगेगा । उलटे उससे हमारे शरीरको हानि ही पहुँचती है और तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं । दूसरी बात यह है कि जब थोडीसी भूख बाकी रह जाय तभी भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए , खूब ठूँस कर भोजन करना और नाक तक भर लेना ही शरीरकी सारी खराबियोंकी जड है । यदि भोजन करनेके समय कोई पदार्थ बहुत ही चरपरा या बढिया होनेके कारण स्वादिष्ट जान पडे और उसे अधिक खानेकी इच्छा हो तो कदापि उस इच्छाके फेरमे न पडना चाहिए और तुरन्त भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए । ऐसे अवसरके लिए एक विद्वान्का आदेश है कि 'अपने कल्याणके लिये अपनी इच्छा और रसनाको वशमे रक्खो; यह प्रमाणित करो कि तुममे इतना नैतिक बल है कि तुम तुच्छ वासनाओंके फेरमें नहीं पड़ सकते ।' बहुतसे लोग पारलौकिक स्वर्गकी कामनासे बडे बडे व्रत करते और इन्द्रियदमनका अभ्यास करते हैं, तुम इहलौकिक स्वर्गकी इच्छासे ही पेटू बनना छोड़ दो । इस पेटूपनसे छुटकारा पानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम सदा सादा और रूखा भोजन करें । पहले तो सादे और रूखे भोजन पर तुम्हारा मन ही नहीं चलेगा, परन्तु जब कुछ दिनोंमे तुम अभ्यस्त होकर उसके गुण जान लोगे तब अच्छोंसे अच्छी चीज पर भी तुम्हारा मन नहीं चलेगा । साधारण फल खाने या दूध पीनेके कारण कभी मनुष्यको अनपच नहीं होता और न खट्टे डकार ही आते हैं । उन दोषोंको उत्पन्न करनेका गुण पूरी, हलुए और मिठाईमें ही है । खान-पानके सम्बन्धमें प्रकृतिकी आज्ञाओका पालन करो । खूब तेज भूख लगने पर सादा भोजन उसी समय तक करो जब तक कि वह तुम्हे खूब स्वादिष्ट जान पडे, तुम्हें कभी कोई शारीरिक व्यथा न होगी ।

जल और वायु ।

जीवमात्रको अपने जीवनकालमे जिस पदार्थकी जितनी अधिक आवश्यकता पडती है प्रकृतिने वह पदार्थ उतनी ही अधिक मात्रामें उत्पन्न और सग्रह करके पहलेसे ही रख दिया है । जीवमात्रके लिए वहुत अधिक मात्रामें और परम आवश्यक वायु होती है । यह वायु ससारमें सव पदार्थोंसे अधिक मानमें है और विना किसी प्रकारके प्रयास या व्ययके सव जगह मिल सकती है । यही नहीं वल्कि प्रकृतिने ऐसी योजना कर रक्खी है कि वह छोटे, वडे, अरक्षित, सुरक्षित, सभी स्थानोंमें आपसे आप पहुँच जाती है । प्रत्येक जीवको कुछ न कुछ वायुकी आवश्यकता होती है, और यदि कोई विशेष प्रतिवन्ध न हो तो उसके लिए प्रत्येक स्थानमें वायु पहुँच भी जाती है । परम उपयोगिता और आवश्यक्ताके विचारसे सासारिक पदार्थोंमें दूसरा स्थान जलका है । हजारों ऐसे जीवोंके नाम वतलाये जा सकते हैं, जो हजारों भिन्न भिन्न पदार्थ खाते हैं, पर वायुके अतिरिक्त यदि ससारमें कोई ऐसी चीज है, जिसकी आवश्यकता उन हजारों जीवोंको पड़ती है तो वह जल ही है। सृष्टिमें जहाँ तहाँ जलकी अधिकता इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए है ।

जिस वायु और जलकी ससारको इतनी अधिक आवश्यकता हो, उस वायु और जलमें अनन्त गुणोंका होना केवल सहज और स्वाभाविक ही नहीं वल्कि अनिवार्य भी है । वायु और जलमें हमारे यहाँ ईश्वरका वास माना गया है और वास्तवमें इन्हीं दोनों पदार्थोंमें सवसे अधिक सजीवनी शक्ति है । जेठ असाढकी धूपमें दोचार कोस चलने या दिनभर वहुत अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त जितनी शान्ति एक गिलास ठढे जल और ठढी हवाके दस पाँच झकोरोंसे होती है उतनी शान्ति, उतना सन्तोष, उतना सुख ससारके और किसी पदार्थसे सम्भावित नहीं । यदि अधिक सुख और अधिक सन्तोष मिल सकता है तो केवल अधिक जल या अधिक वायुसे ही मिल सकता है । कपड़े उतार दीजिए और शरीरमें ठढी हवा लगने दीजिए, आपके सारे कष्ट मिट जायँगे और मन प्रफुल्लित हो जायगा । वढिया ठढे जलसे स्नान कर डालिए, सारी थकावट दूर हो जायगी और शरीर हल्का हो जायगा । उस समय आप भी हमारी तरह कहने

लगेंगे कि ऐसे सुन्दर पदार्थोंसे लाभ उठानेकी अपेक्षा जो लोग और तरहके दूषित, निन्दनीय और हानिकारक उपाय करते हैं, वे महामूर्ख हैं ।

पर तो भी ससारमे ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो ठढी हवा और ठंढे जलको हौआ समझते हो,-जिन्हें ठंढी हवा और ठढे जलमे बड़े बड़े दॉत दिखाई देते हो । खुली हवामें रहने और खुले जलमें स्नान करनेसे जितने लाभ होते हैं उनका वर्णन नहीं हो सकता । पाश्चात्य विद्वानोंने तो उनकी उपयोगिताका यहॉतक पता लगा लिया है कि अन्तमें उन्हें जल-चिकित्सा और वायु-चिकित्साको एक निश्चित और नियमित विज्ञानका रूप देना पड़ा है । ससारकी प्राचीन जातियोंने भी अपने अपने समयमे आवश्यकतानुसार उनके लाभ समझ लिए थे और उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी थी। ब्राह्म मुहूर्त्तमे—जिस समयकी वायु सवसे अधिक शुद्ध होती है—उठना, पास या दूरकी नदीमें स्नान करना और खुली हवामें वैठ कर ईश्वराराधन करना, प्राचीन आर्य्योंका सर्वप्रधान कर्त्तव्य होता था । आजतक उनकी वहुतसी सन्तानें उस कर्त्तव्यका वहुतसे अशोंमे पालन करती ही हैं । मिश्र तथा यूनानके प्राचीन निवासी भी इन प्राकृतिक और स्वाथ्यप्रद आवश्यकताओको वहुत अच्छी तरह समझते थे । वहॉके प्रत्येक नगरमें वढिया वाढ़िया स्नानागार होते थे जिनमेंसे अधिकांशके व्यय-निर्वाहके लिए सर्वसाधारण पर कर लगाया जाता था । दक्षिण युरोपमे इस प्रकारके स्नानागार ईसासे पॉच छ सौ वर्ष पहले तक हुआ करते थे । रोमके प्राचीन निवासियोंने अपने उन्नति-कालमे इसी प्रकारके अनेक प्रवन्ध किये थे । आजतक ससारसे खुले जलमें तैरने अथवा खुली हवामें टहलनेसे वढ़कर और कोई व्यायाम लाभदायक प्रमाणित नहीं हुआ । इन दोनोंकी श्रेष्ठताका मुख्य कारण जल और वायुकी ही श्रेष्ठता है, हमारे शरीर-सचालनका इसमे कोई निहोरा नहीं है ।

संसारकी सारी गन्दगीका नाश या तो जलसे होता है और या वायुसे । सूर्यके प्रकाशसे भी उसके नष्ट होनेमें वहुत सहायता मिलती है, पर गन्दगी दूर करनेवाले पदार्थोंमे उसका नंवर तीसरा ही है । मैले कपड़े या स्थान आदि धोनेके लिए जलका ही व्यवहार होता है । यहॉ तक कि हमारे शरीरके भीतरकी

गन्दगी भी जलसे ही नष्ट होती है। हर तरहकी बेचैनी और घबराहट दूर करनेमें जल पीनेसे ही सहायता मिलती है। शरीरके किसी कटे हुए स्थान पर पानी डालने या गीला कपड़ा बाँधनेसे ही आराम मिलता है, और यहाँतक कि फोड़े फुसियों आदिमें भी गीला कपड़ा बाँधना ही लाभदायक होता है। पाश्चात्य जल-चिकित्सक तो सारे रोगोंकी चिकित्सा जलके अनेक प्रकारके प्रयोग से ही करते हैं। ऐसे उपयोगी पदार्थसे कभी किसी दशामे डरनेका कोई कारण नहीं है। आरोग्यताकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको हर एक चौवीस घंटेमें यदि सम्भव हो तो दो वार और नहीं तो कमसे कम एक वार अवश्य खुले जलमें स्नान करना चाहिए और यथासाध्य वहुतसा स्वच्छ और ताजा जल पीना चाहिए। स्नान करनेसे सारे शरीरके रोमकूप खुल और साफ हो जाते हैं और उनमेंसे शरीरका वहुतसा विकार अनायास ही निकल जाता है। जल पीनेसे भी प्राय यही लाभ होता है, वल्कि कुछ अशोंमें उससे होनेवाला लाभ विशेष होता है, क्योकि पेटमे उतारा हुआ जल पेट और पेड़ूके वहुतसे विकारोंको भी निकाल वाहर करता है।

वायु और रोग।

ठंढे स्वच्छ और अधिक जलके अभावमें उसका वहुतसा काम ठढी, स्वच्छ और अधिक वायुसे भी निकल जाता है। प्राय सभी देशोमें वर्षके अधिकांशमें ठंढी ही हवा चलती है, गरम हवा कम। वहुत गरम देशोंमें भी कमसे कम सवेरे और सन्ध्याके समय चलनेवाली हवा तो अवश्य ही ठंढी होती है। ठंढी हवामें गहरी साँस लेनेसे हमारे फेफड़ोंके सारे विकारोंका नाश हो जाता है। यह वात सभी लोग जानते हैं कि गन्दी और थोडी हवाके कारण मनुष्यको अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं और उन रोगोंमे क्षय प्रधान है। स्वच्छ और ठढी वायुके यथेष्ट सेवनसे कमसे कम श्वास और फेफडे-सम्वन्धी सभी रोग वहुत सहजमें नष्ट हो जाते हैं। रोगियों और चिकित्सकोंकी इतनी अधिकता होने पर भी आजकल रोगोंके कारणोंका किसीको ठीक ठीक पता नहीं चलता। एक जुकामको ही लीजिए। सव लोग समझते हैं कि ठढी हवा लगनेसे ही जुकाम हो जाता है, अथवा जुकामका कारण किसी न किसी प्रकारकी

ठंडक है। सालमें कमसे कम दो तीन वार तो सभीको जुकाम होता है; पर वहुतसे लोगोंको हर महीने भी जुकाम हो जाया करता है। यदि कहीं जुकाम विगड गया तो वनफशा या इसी प्रकारकी और कोई दवा पीते पीते नाकमें दम आ जाता है। लोग वरसात या जाड़ेके दिनोंमें सव खिडकियों और किवाडोंको इस प्रकार वन्द कर लेते हैं कि उनमेंसे जरासी भी हवा न आ सके, और उस कमरेकी गरम हवामें रातभर वन्द रहते हैं। यदि आप किसीसे पूछिए कि भाई तुम्हें जुकाम कैसे हो गया? तो उत्तर मिलता है कि रातको सोए सोए वहुत गरमी मालूम हुई, जरा खिडकी खोली, उसके खोलते ही ठंढी हवाका झकोरा लगा और जुकाम हो गया। अथवा इसी प्रकार जहाँ और कहीं थोडीसी ठंढक मिली कि लोगोको जुकाम हो गया। पाश्चात्य देशोंके विद्वानोंने तो अन्य रोगोंके कीटाणुओंकी तरह जुकामके भी कीटाणु ही मान लिये हैं और उन कीटाणुओके नाशके लिए ही जुकामके रोगियोको तरह तरहकी ओपधियाँ दी जाती है! पर कोई बुद्धिमान् इस वातका जरा भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि जुकाम उन्हीं लोगोंको होता है जो ठढी हवाको हौआ समझकर उससे डरते हैं, और जो लोग सदा ठंढी हवामें घूमते फिरते हैं उन्हें कभी जुकाम होता ही नहीं। जुकामके सारे कीडे मैदानों और गरम स्थानोंमे ही फैलते है, ठंटे, वरफीले या पहाडी स्थानों पर उनकी कोई दाल नहीं गलती। जो लोग उत्तरी ध्रुव तक हो आये हैं उनका कथन है कि वहाँके देशोंमे जुकाम या इसी प्रकारका और कोई रोग नहीं होता। यही नहीं वल्कि दिनरात ठंढी हवा और वरफमें रहनेवाले वहाँके निवासी फेफडेकी किसी वीमारीका नाम भी नहीं जानते। ये सव रोग उन्हीं लोगोको होते हैं जो ठढी हवासे डरते और घवराते हैं। स्वच्छ, खुली और ठढी हवाका सेवन करनेवालोंसे स्वयं उन रोगोंको डर लगता रहता है।

गरमीके दिनोंमें मच्छड़ोसे वचनेके लिए घर घर मसहरियाँ टाँगी जाती हैं; उन मसहरियोंमे वहुतसे रुपये भी खर्च होते हैं। इस देशमें तो मसहरियोंका व्यवहार केवल मच्छडोंके डंकसे वचनेके लिए ही होता है, पर पाश्चात्य देशोंमें उन रोगोसे वचनेके लिए भी होता है जो मच्छडोंके द्वारा भयंकर रूपसे फैलते हैं। पर लाख उपाय करने पर भी मच्छड काटते ही हैं और रोग फैलते ही हैं।

पर क्या मच्छड़ोंके डक और उनके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे डरनेवाले लोगोंने कभी यह किस्सा भी सुना है कि एक वार मच्छड़ोने जाकर अल्लाह मियाँसे फरियाद की थी कि सरकार, हवा हमे वहुत दिक करती है, कहीं ठहरने नहीं देती। अल्लाह मियाँने जब हवाको वुलवाया तो मच्छड़ वहाँसे भी भाग गये। हवाके वहाँसे चले जाने पर मच्छड़ फिर रोते हुए अल्लाह मियाँके पास पहुँचे। उस वार अल्लाह मियाँने मच्छडोंको वहुत फटकारा और कहा कि फैसला तभी हो सकता है जव मुद्दई और मुद्दालेह दोनो मौजूद हों, जव तुम हवाके जाने पर यहाँ ठहरते ही नहीं, तव फिर मैं तुम्हारा फैसला कैसे करूँ? यदि मच्छड़ोंके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न करनेवाले रोगियों और डाक्टरो तथा मच्छड़ोंके डकसे वचनेकी इच्छा रखनेवाले शौकीनोंने यह किस्सा न सुना हो, तो अव सुन लें और यदि पहले भी कभी सुना हो तो अव समझ ले कि मच्छडोंको दूर करनेका सवसे सहज उपाय है—वढिया, ठढी और तेज हवा। मकान ऐसे वनवाइए जिनमे हर सव तरफसे वढिया हवा आती हो। फिर क्या मजाल जो मच्छड आपको काटें या दूसरोंके रोग लगकर आपको रोगी करें।

वारहो महीने जुकाम और खाँसी आदि रोगोंसे पीड़ित रहनेवाले लोग यदि अधिक समय तक खुली और ठढी हवामें रहनेका अभ्यास करें तो वहुत सहजमें और सदाके लिए उन रोगोसे उनका छुटकारा हो जाय। ठढी हवा एक ऐसा पौष्टिक द्रव्य है, जो हमारे फेफडों आदिको ऐसी दशाओंमे भी वल प्रदान करता है जव कि ससारभरकी सारी पौष्टिक ओषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होती हैं। ज्योंही तुम्हें गले या फेफड़े आदिमे किसी तरहकी शिकायत उठती हुई जान पडे त्योंही ठढी और साफ हवाका खूव सेवन करो, उस शिकायतका नाम भी न रह जायगा। वात यह है कि जिस स्थान पर किसी प्राकृतिक तत्त्वकी आवश्यकता होती है वहाँ औषधों अथवा इसी प्रकारके और किसी पदार्थसे काम नहीं चल सकता। जव हमें वहुत तेज धूप या आँच लगती है तव हमारी त्वचा किसी प्रकारका मरहम या तेल नहीं माँगती, वल्कि वह वहाँसे हटकर केवल ठढे स्थानमे जाना चाहती है। दूसरे पदार्थसे उसका कष्ट दूर ही नहीं हो सकता। इस प्रकार जो रोग शुद्ध, स्वच्छ और अधिक वायुके अभावके कारण होते हैं, क्या गोलियाँ, पुडियाँ और

शीशियाँ उन्हें दूर करनेमें कभी समर्थ हो सकती है? कदापि नहीं। उनकी आवश्यकता तो केवल स्वच्छ और अधिक हवा ही पूरी कर सकती है।

पाचनसम्बन्धी दोषोंको दूर करनेके लिए भी स्वच्छ वायु रामबाण ही है। इसका प्रमाण आपको सारे ससारमे मिलेगा। जो लोग विषुवत् रेखासे जितनी ही दूर रहते हैं उनकी पाचन-शक्ति उतनी ही अधिक होती है। उत्तरी ध्रुवमें रहनेवाले एस्किमो लोग इतना अधिक भोजन पचाते हैं जितना छः हिन्दू भी नहीं पचा सकते। जो लोग सदा खुली हवामे रहते हैं, उनकी शारीरिक और पाचन-शक्ति विना किसी प्रकारके परिश्रम या व्यायामके ही वढ जाती है। खुली हवामे साँस लेनेसे रक्त खूब शुद्ध होता है और उसका संचार भी वढ जाता है। इस शुद्धि और सचारका शरीरके सभी अगों पर वहुत ही उत्तम प्रभाव पडता है। जव डाक्टर लोग औषध आदि देते देते थक जाते हैं और रोगीकी दशा किसी प्रकार नहीं सुधरती तव रोगियोंको वे लोग पहाड़ या समुद्र-तट पर जानेकी सम्मति इसी लिए देते हैं। जिन लोगोंको अनपच हो गया हो वे और दिनोंमें रात भर खुली हवामे सोकर तथा जाड़ेके दिनोंमें अधखुली खिड़कियोंके पास सोकर ही अपने रोगसे छुटकारा पा सकते हैं। घी, मक्खन आदि अथवा इसी प्रकारके अन्य ऐसे पदार्थ जिनमें नाइट्रोजन नहीं होता, ठंढी और सहज वायुकी सहायतासे वहुत ही सहजमें पचाये जा सकते हैं।

ठढी और स्वच्छ वायुमे उन्निद्र रोगको दूर करनेकी विलक्षण शक्ति है। वहुत ठढे प्रदेशोंमें जाडा आते ही वहुत से जानवर किसी एकान्त स्थानमें चले जाते हैं और वसन्त ऋतुके आगमन तक विना किसी प्रकारका आहार किये महीनों सोते या ऊँघते रहते हैं। स्वयं हम सव लोगोंको और दिनोंकी अपेक्षा जाड़ेमें कहीं अच्छी और आधिक नींद आती है। इसका कारण यही है कि जाड़ेमें हवा ठंढी और आधिक होती है। डा० फ्राक्लिनकी सम्मतिमे ठढी हवा नींद आनेकी वहुत अच्छी दवा है। आप लिखते हैं,—

—"गरमियोमें रातके समय जव मैं सोनेके अनेक निरर्थक प्रयत्न कर चुकता हूँ तव उठ कर वैठ जाता हूँ और अपने सामनेकी खिड़की खोल कर प्राय पन्द्रह मिनट तक नंगे वदन हवाके रुख पर वैठा रहता हूँ। उस समय

नींद न आनेका चाहे जो कारण हो वह दूर हो जाता है और उसके वाद जव मैं लेटता हूँ तव मुझे कमसे कम दो तीन घटोंके लिए खूव गहरी नींद आ जाती है।"

यदि नींद न आने पर स्वच्छ वायुका सेवन करनेके समय थोड़ी हलकी कसरत भी कर ली जाय तो उससे और भी अधिक लाभ होता है। सोनेके समय रक्तकी यथेष्ट रूपसे शुद्धि नहीं होती, इसी लिए वहुवा सोए सोए नींद खुल जाया करती है। यदि सन्ध्याके समय थोडा सा व्यायाम कर लिया जाय या दो चार मीलका चक्कर लगा लिया जाय तो उस दोपकी सम्भावना नहीं रह जाती और मनुष्य वडे आनन्दसे सारी रात खूव गहरी नींदमें सोया रह सकता है।

वायुसेवन।

पिछले पृष्ठोंमे एक स्थान पर यह वतलाया जा चुका है कि शरीरको नीरोग करने और स्वास्थ्य वनाये रखनेमें एक मात्र उपवास ही सहायक नहीं हो सकता, वल्कि उसके लिए स्वच्छ वायु और व्यायाम आदिकी भी आवश्यकता होती है। स्वच्छ वायुके सेवनसे जितने लाभ हो सकते है उन सवका वर्णन करना कमसे कम हमारी सामर्थ्यके तो वाहर है। केवल घरोंमें वन्द रहकर रटन्त करनेवाले वालकोंकी अपेक्षा गलियो, सड़कों और मैदानोंमें चक्कर लगानेवाले वालक और उनकी अपेक्षा सदा खुली हवामें रहनेवाले देहाती वालक कहीं अधिक नीरोग और वलिष्ठ हुआ करते है। पालतू (और फलत गन्दी हवामें रहनेवाले) जानवरोंकी अपेक्षा जगली (और फलत साफ हवामें रहनेवाले) जानवर कहीं अधिक वलिष्ठ और फुरतीले हुआ करते हैं। प्राय सभी धर्म्मोंमें नगे पैरों और पैदल चलकर अनेक तीर्थोंकी यात्रायें करनेका विधान है, और उस विधानमें भी स्वास्थ्यसम्वन्धी यही परमोपयोगी और लाभदायक सिद्धान्त है। उन यात्राओं पर आजकलकी नई रोशनीके लोग भले ही हँसें पर उन्हें भी किसी न किसी रूपमें—कमसे कम किसी वड़े मैदानकी ही सही—यात्रा करनेकी अवश्य आवश्यकता होती है, और यदि वे वह यात्रा न करें तो उन्हें उसका दुष्परिणाम भी भोगना पड़ता है।

वायु-सेवनका सबसे अच्छा समय प्रभात है, क्योंकि उस समय वायु बहुत शुद्ध, स्वच्छ, शीतल, मन्द और अधिक होती है। ऐसे समयमें यदि मनुष्य नित्य दो, चार या पाँच मीलका चक्कर खेतों और मैदानों आदिमे लगाया करे तो उसे कभी किसी डाक्टर, वैद्य या हकीम आदिका मुँह देखनेकी आवश्यकता नहीं रह सकती। उस समय हमारे शरीरको वायुसे जो लाभ पहुँचता है वह तो पहुँचता ही है, इसके अतिरिक्त रातभरकी ओस हमारे पैरोंसे लगकर हमें और भी अधिक लाभ पहुँचाती है। ठंढे देशोंमें रहनेवाले लोगोंको तो यह लाभ अनायास हो हो जाता है, पर जो लोग गरम देशोंमे रहते हैं वे भी सवेरेके समय मैदानों और जगलोंमे घूमकर पहाड़ों और ठढे देशोंमें रहनेके लाभ उठा सकते हैं। साँस लेनेसे जो वायु दूषित हो जाती है वह साधारण और शुद्ध वायुकी अपेक्षा कहीं अधिक भारी होती है, और इसी लिए वह प्रायः बन्द और नीचे स्थानों—कोठरियों, दालानो तहखानों और गलियों आदि—में ही रहती है। अत वायुसेवनके लिए मनुष्यको ऐसे स्थानों पर निकल जाना चाहिए जो बस्तीसे बहुत दूर और ऊँचे हों। पर यह बात बहुत ऊँचे पहाड़ों पर रहनेवालोंके लिए नहीं है, क्योंकि बहुत अधिक उँचाई पर वायु स्वयं ही कम और हलकी हो जाती है और साँस लेनेके लिए ही यथेष्ट नहीं होती। वहाँकी वायु तो शरीर और विशेषत. फेफड़ोके लिए और भी हानिकारक होती है। अतः ऐसे स्थानो पर जहाँतक हो सके, और नीचे ही उतर आना चाहिए। यदि सम्भव हो तो सोनेके लिए बल्कि रहनेके लिए भी—नगरसे दूर किसी ऐसे मैदानमें प्रबन्ध करना चाहिए जहाँ श्वाससे दूषित वायुके पहुँचनेकी सम्भावना न हो और जहाँ यथेष्ट सरदी पड़ती हो। ऐसा प्रबन्ध एक साधारण छोटी मोटी झोपड़ी बनाकर भी किया जा सकता है। वहाँ मनुष्य जब चाहे तब सुन्दर स्वच्छ शीतल और पहाड़ोंकी वायुके मुकाबलेकी वायुका सेवन कर सकता है। जिस समय ठढी वायु न मिल सकती हो और मौसिम बहुत गरम हो उस समय पासके किसी झरने या छोटी नदीके शीतल जलमे ही स्नान कर लेना चाहिए।

उन मैदानों और जगलोंमें भी मनुष्यके लिए ऐसे कामोंकी कमी नहीं है जिनसे उसका मनोरंजन होनेके साथ ही साथ बहुत कुछ व्यायाम भी हो जाता है।

घूम घूम कर तरह तरहके फल और मेवे आदि खाना और आवश्यकता पड़ने पर उनके पेड़ों पर चढना कम स्वास्थ्यप्रद नहीं है। चतुर और दक्ष मनुष्य मधु-मक्खियोंके छत्तेमेंसे बहुत सा शहद भी जमा कर सकता है। पेड़ों पर चढना एक ऐसी कसरत है जिससे शरीरके अंग-प्रत्यग पर जोर पडता है और शरीर खूब फुरतीला हो जाता है। यह कसरत उन लोगोंके लिए और भी अधिक उपयोगी होती है जो दमे अथवा इसी प्रकारके और किसी रोगसे पीडित हों। इसी प्रकार वहाँ और भी अनेक ऐसे काम निकाले जा सकते हैं जिनसे मनोविनोद, शारीरिक श्रम और आर्थिक लाभ आदि सभी बातें हो सकती हैं। वहाँ रह कर मनुष्य तरह तरहकी प्राकृतिक शोभायें निरख सकता है, अपना ज्ञान बढा सकता है, रोगोंसे मुक्त हो सकता है, अनेक प्रकारकी बुराइयो और दोषोंसे बच सकता है और अपने मन तथा आत्माको शुद्ध और सस्कृत कर सकता है। यदि मनुष्य सदा ही ऐसा जीवन न व्यतीत कर सकता हो तो उसे कमसे कम सप्ताहमें एक दिन, महीनेमें चार दिन अथवा वर्षमें एक महीने अवश्य ही ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन स्वास्थ्यप्रद होनेके अतिरिक्त बडा ही सात्त्विक और शुद्ध होता है और उसीसे मनुष्यको वास्तविक और सच्चा सुख मिल सकता है।

नगरमें रहनेवाले बालकोंको आरम्भसे ही ऐसा मनोहर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास डालना चाहिए। जो बालक इस प्रकार प्राकृतिक शोभाओंको निरखता रहेगा वह बड़े बडे शहरोंकी गन्दी गलियोंमें घूमनेवाले बालककी अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग, बुद्धिमान् और धर्म्मात्मा होगा। रेलों और जहाजों पर चढकर बडे बडे नगरों आदिके देखनेमें बहुतसा धन व्यय करनेकी अपेक्षा बहुत ही थोड़े खर्चेमें आसपासकी प्राकृतिक शोभायें देखना कहीं अधिक लाभदायक है। हममेंसे अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जो सदा अपने व्यापारों और कार्य्यों आदिमे ही लगे रहकर कूप-मडूक और रोगोंके घर बने रहते हैं। जो जो कृत्य वे सुखी होनेके लिए करते हैं, वे ही कृत्य उन्हें और अधिक दु खी बनानेके साधन होते हैं। ऐसे लोगोंको यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिए कि प्रकृतिसे बढकर हमें सुखी करनेवाला और कोई पदार्थ ससारमें नहीं है। जो लोग देहातसे चल कर किसी काम धन्धेके लिए शहरोंमें रहते हैं वे कभी कभी छुट्टी लेकर आराम-

करनेके लिए अपने देहाती मकानोंमे तो अवश्य पहुँच जाते हैं, पर नगरमे पडे हुए अभ्यासके कारण वे देहातोमे होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे लोग थोडासा भी प्रयत्न करें तो वडी वडी पौष्टिक औषधोकी अपेक्षा कहीं अधिक पौष्टिक पदार्थोंसे वहुत विशेष लाभ उठा सकते है। प्राकृतिक शोभाओं आदिके देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि एक विद्वान्ने उनसे वचित रहनेको वडा भारी पाप कहा है।

वहुतसे अभागे लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते है कि जव वह स्वय उनके पास आना चाहती है तव भी वे लोग अपने द्वार वन्द कर लेते हैं। रातके समय आपको नगरोंके अधिकाश मकानोकी खिडकियाँ और दरवाजे आदि वन्द ही मिलेगे, चाहे उनके भीतर रहने-वालेको कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सव किवाड़े वन्द कर लेते हैं और लिहाफ या ओढनेके अन्दर मुँह ढँक कर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या अभिकसे अधिक कोठरीकी हवा साँस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी हवामे साँस लेते हैं। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा सालमें छ सात महीने अवस्य रहती है। हमारे वगाली भाई तो गरमीके दिनोंमें भी ओस और हवासे वचनेके लिए रातको छाता लगाकर सडको पर चलते और मसहरियाँ लगा कर सोते हैं। खुली छतोंपर सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नही है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऐसा करना वहुत ही हानिकारक है।

युरोप अमेरिका आदि देशोमें रातको सोनेके समय मकानकी सारी खिडकियाँ और दरवाजे आदि वन्द कर लेनेकी और भी अधिक प्रथा है। क्रीमियाके युद्धमें रोगियोंकी सेवा शुश्रूषा आदि करनेमें जिस देवी नाइटिंगेलने इतना नाम पाया था, उसे रोगियोंको रातके समय अस्पतालके दरवाजे आदि वन्द करके रातभर गन्दी वायुमें रहते देखकर अत्यन्त आश्चर्य और दु ख हुआ था। एक वार उसने कुछ रोगियोंसे पूछा भी था–"रातकी वायुसे तुम लोग इतना क्यो डरते हो? क्या तुम लोग यह समझते हो कि कुछ समयके लिए सूर्य्यका प्रकाश न रहनेके कारण ही वायु भयंकर और नाशक हो जाती है? सूर्य्यास्तके वाद तुम्हें प्रकाश-पूर्ण दिनकी हवा तो मिल ही नहीं सकती, अव चाहे तुम रातकी स्वच्छ प्राणप्रद

और स्वास्थ्यवर्द्धक बाहरी वायुका सेवन करो और चाहे रोग उत्पन्न करनेवाली कमरेके अन्दरकी गन्दी हवामें रहो।"

लोग हवासे तो इतना नहीं डरते पर उसके झोंकोंसे बहुत अधिक डरते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि यही झोंके हमारे शरीर और फेफड़ोंका बल बढ़ानेमें सबसे अधिक सहायक होते हैं। सूर्य्यास्तके उपरान्त जब वातावरण ठंढा हो जाता है तब उसके कारण वायुमें सचारशक्ति स्वभावत बढ़ जाती है। सचारके कारण वायुकी शुद्धिमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। इसलिए रातकी वायु दिनकी वायुकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होती है। बाहरकी बहती हुई और कमरेके अन्दरकी रुकी हुई हवामें उतना ही अन्तर है, जितना कि हरिद्वारके पासकी गंगा और किसी बगाली गाँवकी गड्हीके जलमें अन्तर होता है। वायुमें ठढकके कारण इतना अधिक गुण बढ़ जाता है कि जाड़ेके दिनोंमे जब कि हवा अधिक ठढी होती है, रोगों और मृत्युकी सख्या और दिनोंकी अपेक्षा बहुत घट जाती है। रातकी उसी ठढी हवासे लोग इतना अधिक भागते और डरते हैं। पर इस भागने और डरनेका उनके स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक मनुष्यको जहाँ तक हो सके सदा अपने कमरोंकी खिड़कियाँ और दरवाजे आदि खुले रखने चाहिए। आप कह सकते हैं कि रातके समय ठढी हवा सही नहीं जाती। वह हवा इसी लिए नहीं सही जा सकती कि आप बहुत दिनोंसे उसके सहनेका अभ्यास छोड़ बैठे हैं। जिस नदीका मार्ग जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपने प्राकृतिक मार्गपर लानेके लिए जिस प्रकार किसी विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार जिस मनुष्यका स्वभाव जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपना प्राकृतिक स्वभाव ग्रहण करनेमे विशेष अड़चन नहीं होती। केवल एक महीनेमें आपको खिड़कियाँ और दरवाजे खोलकर सोने और बैठनेका इतना अभ्यास हो जायगा कि फिर आपको बन्द कमरोंमें थोड़ी देरतक रहना भी बहुत कठिन जान पड़ेगा। जाड़ेके दिनोंमे अथवा अन्य अवसरो पर जब कि ठढी और तेज हवा चलती हो, आप सरदीसे बचनेके लिए एकके बदले दो और दोके बदले तीन लिहाफ ओढ़ें, पर खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द करके गन्दी और जहरीली हवामें कभी रात भर न पड़े रहें। किवाड़े बन्द करनेमें यदि आपका मुख्य उद्देश्य सरदीसे बचना ही हो, तो वह उद्देश्य लिहाफोंकी सख्या

वढानेसे भी पूरा हो जाता है, पर हॉ यदि आप गन्दी और विषाक्त हवाके उद्देश्यसे ही किवाडे वन्द करते हों तो वात दूसरी है । आपका स्वास्थ्य वनाये रखने और सुधारनेके लिए साफ हवाकी आवश्यकता है, आप इस वातकी कभी चिन्ता न करें कि वह साफ हवा कितनी ठंटी है । वहुत तेज जाडा पडने पर आप यदि पूरी खिडकी न खोल सकें तो आधी अथवा थोडीसी अवश्य खोल दें; क्योंकि वहुत तेज ठढकसे सव प्रकारके दूषित कीटाणुओं आदिका नाश होता है ।

सदा खुली हवामे रहनेका अभ्यास करो, तुम्हे कभी कोई रोग न होगा । यही नहीं वल्कि उस दशामें तुम गन्दी और वन्द हवामे थोडी देरतक भी न रह सकोगे । अभी हालमे जव कप्तान कुक दक्षिणी ध्रुवकी ओर गये थे तव वहॉके एक टापूमे उनका जहाज ठहरा था । वहॉके कुछ जगली लोग मल्लाहोंके साथ जहाज पर चले आये और थोडी देरतक उनकी कोठरियोंमे रहे । उतने ही समयमे उन्हें वेतरह खॉसी आने लगी, छातीमे दरद होने लगा और उनमेंसे कुछको वुखार भी आने लगा । पुश्तहा पुश्तसे खुली हवामे रहनेके कारण वे उसके इतने अभ्यस्त हो गये थे कि दस पॉच मिनिट भी गन्दी हवामे रहकर वे उसके दुष्परिणामसे न वच सके ।

व्यायाम ।

अव हम स्वास्थ्य-सम्वन्धी अन्तिम सिद्धान्तकी कुछ वातें वतलाकर यह पुस्तक समाप्त करते है । उपवास, जल और वायु आदिके अतिरिक्त मनुष्यकी आरोग्यताके लिए व्यायाम भी वहुत ही आवश्यक है । व्यायामकी उपयोगिता इतनी अधिक और सर्व-सम्मत है कि आजतक उसके सम्वन्धमें कभी किसी प्रकारका वादविवाद या विरोध हुआ ही नहीं । मनुष्यजातिको व्यायामसे होनेवाले लाभ हजारों वर्षोंसे मालूम हैं और सदा उनकी उपयोगिताका समर्थन होता आया है । एक प्रसिद्ध डाक्टरका मत है कि जव मैं शारीरिक श्रमसे होने-वाले कामोंकी ओर ध्यान देता हूँ तव मुझे कहना पडता है कि यदि सर्वसाधा-रणमें व्यायामका यथेष्ट प्रचार हो जाय तो आजकलके वहुतसे फैशनेवुल रोगोंका आपसे आप नाश हो सकता है । रोगोंको औषध आदिकी सहायतासे दूर कर-

नेकी अपेक्षा शारीरिक संगठनको दृढ करके दूर कर देना कहीं अधिक उत्तम और निर्दोष है। चिरायता या नीमकी पत्तियोंको औटा औटा कर उनके विषतुल्य कड़ुए काढे पीनेकी अपेक्षा उन पेड़ों पर चढ़ना अथवा उन्हें कुल्हाडीसे काटना कहीं अधिक उपयोगी है। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध राजमंत्री ग्लैड्स्टनने भूख बढ़ानेके लिए तरह तरहकी औषधोंकी अपेक्षा कुल्हाडी और रस्सी लेकर सबेरेके समय जंगलकी ओर निकल जानेको ही अधिक उपयोगी बतलाया था।

मनुष्यके शरीरकी उपमा किसी ऐसी नावसे दी जा सकती है, जिसके चलानेके लिए बिजली (या भाफ आदि) और पाल दोनोंकी आवश्यकता होती हो। जिस समय हवा बन्द रहेगी उस समय तो वह नाव बिजली या भाफके सहारेसे चलती रहेगी, पर जब हवा चलने लगेगी तब उसकी गतिके बढ़ानेमें पालसे भी सहायता मिलेगी। ठीक यही दशा हमारे शरीरकी है। साधारण स्थितिमें तो वह अपनी भीतरी शक्तिसे काम करता ही रहेगा पर वायुसेवन और व्यायाम आदि पालकी तरह उसकी सहायता करेंगे। यही नहीं बल्कि जब कभी हमारे शरीरके भीतरी इंजिनके बिगड़नेकी बारी आवेगी तब उसी व्यायामरूपी पालकी सहायताके कारण उसकी गतिमें कोई अन्तर न आने पावेगा। व्यायामके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह दंड, मुगदल, बैठक, डंबेल या जिम्नास्टिक आदिके रूपमें ही हो। सभी प्रकारके कठिन शारीरिक परिश्रम व्यायाम ही हैं। किसी पहाडी पर चढ़ने या दौड़नेसे आपका केवल व्यायाम ही नहीं होगा बल्कि आप कलेजे और श्वाससम्बन्धी सब प्रकारके रोगोंसे भी मुक्त रहेंगे। अफीमके सतकी गोलियाँ खाकर आप कुछ समयके लिए उन्निद्र रोगको भले ही दबा लें, पर उसका अन्तिम परिणाम आपके लिए घातक ही होगा। पर दिनके समय मैदानोंमें दौड़-धूपकर अथवा चक्कर लगाकर बिना कुछ व्यय किये अथवा जोखिम उठाये आप केवल अपने उन्निद्र रोगसे ही मुक्त नहीं हो जायँगे, बल्कि और भी किसी रोगको अपने शरीरमें घर न करने देंगे। रोगोंकी भयंकरताका कारण बहुधा शारीरिक दुर्बलता ही हुआ करती है और उस दुर्बलताको समूल नाश करनेका मुख्य और सर्वोत्तम साधन व्यायाम है।

डाक्टर इंगलैण्डकी सम्मति है कि इधर बहुत दिनोंसे मनुष्य घरके अन्दर बन्द रहने और पका पकाया भोजन करने लग गया है, और दिन पर दिन उसके रोगी और दुर्बल होनेका मुख्य कारण यही है । यदि मनुष्य अपनी शारीरिक दशा सुधारना चाहे तो उसे उचित है कि वह उन्हीं प्राकृतिक नियमोंका पालन फिरसे आरम्भ कर दे, जिनके अनुसार वह बहुत प्राचीन कालमें चलता था । अर्थात् यदि मनुष्य नीरोग रहना और बलिष्ठ होना चाहता हो तो उसे उचित है कि वह यथासाध्य शहरके बाहर मैदानमे रहे अथवा वनमें कम घूमे फिरे और सदा सादा भोजन करे । डाक्टर बगनर मैक-फेडनका मत है कि मनुष्यका शारीरिक अथवा नैतिक संगठन कदापि आधुनिक नष्ट सभ्यताके उस जीवनके लिए उपयुक्त नहीं है जो उसे सदा घरोंमें बन्द रखता और दिनपर दिन उसको शारीरिक श्रमसे वंचित करता जाता है । यदि डारविन साहबका सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय—जो कि वास्तवमे बहुतसे अंशोंमें ठीक होनेके अतिरिक्त संसारमे प्राय. सर्वमान्य सा है—तो उक्त दोनों विद्वानोंके मतोंकी और भी अधिक पुष्टि हो जाती है । उसके भाईबन्द—बन्दर, गुरिल्ले, चिम्पेंजी आदि—सदा एक पेड़परसे दूसरे पेड़ पर कूदा करते हैं और जंगल जंगल घूमते रहते हैं । इस दृष्टान्तसे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य भी विज्ञान और कलाकौशल आदिका पीछा छोड़कर उन्हींका सा हो जाय । कहनेका मतलब केवल यही है कि मनुष्य निकम्मा और सुस्त बने रहनेके लिए नहीं है, बल्कि चंचल, चपल और फुरतीला बने रहनेके लिए है ।

जो लोग सभ्यताके इतिहास और विकासके सिद्धान्तोंसे भली भाँति परिचित हैं उन्हें यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि मनुष्य निरी जंगली अवस्थासे कितने रूपोंमे परिवर्त्तित होकर वर्त्तमान स्थिति तक पहुँचा है । उसकी सभ्यता और एक-देशीयताके साथ ही साथ अकर्मण्यता और अस्वस्थता आदि अनेक दोषोंकी भी समान मात्रामे ही वृद्धि होती जाती है । यद्यपि मानव-समाजका फिर उसी प्राचीन स्थिति तक पहुँच जाना न तो किसीको अभीष्ट ही हो सकता है और न सम्भव ही है, तथापि उसके शारीरिक कल्याणके लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वह उस प्राचीन कालके अपने जीवनका सर्वांगमें परित्याग न कर

दे। जिस मनुष्यके पूर्वज सदा अपना डेरा डंडा लादे हुए एक स्थानसे दूसरे स्थान तक घूमा करते थे, वही मनुष्य आजकल सभ्य हो जानेके कारण सौ पचास कदम चलनेमें भी अपना अपमान समझता है। आजकल मकान ऐसे स्थानो पर बनवाये या लिए जाते है, जहाँ दरवाजे तक गाडी लग सके। गाडी पर सवार होनेके लिए बाबू साहबको सडक तक चलनेकी तकलीफ भी न उठानी पडे। इस सुकुमारताका फल भी हाथोहाथ मिल जाता है। बाबू साहब सदा दो चार रोगोंका अड्डा बने रहते हैं। अधिक पैदल चलनेसे सालमें दो चार जूतोका खर्च भले ही बढ जाय, पर डाक्टरकी फीस और नुसखोंके दाम देनेसे अवश्य छुटकारा हो जायगा। खूब घूमने फिरनेके लाभोंकी परीक्षा दो ही दिनमें हो सकती है, एक दिन आनन्दपूर्वक घरमे ही बैठे रहकर और दूसरे दिन दो चार दस मीलका चक्कर लगाकर। पहले दिन आप जो कुछ खायँगे वह छाती पर धरा रह जायगा और रातको अच्छी तरह नींद न आवेगी और दूसरे दिन भोजन मजेमे पच जायगा और रात भर आप खूब खर्राटे लेंगे।

मनुष्यका शारीरिक-सगठन ही कुछ ऐसा अद्भुत है कि उसके जिस अगसे काम न लिया जायगा वह धीरे धीरे दुर्बल होने लगेगा और अन्तमें बेकाम या नष्ट हो जायगा। हाथों पैरोंसे काम न लिया जाय तो वे सूख जायँगे, बहुत ही मुलायम और पतला भोजन करनेसे दॉत झड जायँगे, और यदि हम दिनरात टोपी और साफेका व्यवहार करके बालोंकी आवश्यकता दूर कर देंगे तो हमारे बाल भी व्यर्थ सिरका बोझ बने रहना पसन्द न करेंगे और झड़ने लगेगे। यही दशा फेफड़ोंकी भी समझिए। यदि हम उनसे यथेष्ट अथवा विशेष रूपसे काम लेना छोड़ देंगे तो निश्चय है कि वे भी रोगी हो जायँगे। फेफडो आदिसे यथेष्ट काम लेनेका सबसे अच्छा उपाय व्यायाम है। जो मनुष्य सदा किसी न किसी प्रकारका व्यायाम करता रहेगा वह किसी प्रकारका व्यायाम न करनेवालेकी अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग और बलिष्ठ रहेगा। यदि समान स्थितिकी दो बहनोंमेंसे एकका विवाह किसी देहाती साधारण जमींदारके साथ और दूसरीका शहरके किसी धनी कोठीवालेके साथ कर दिया जाय तो शरीरसे काम लेनेकी उपयोगिता सहजमें सिद्ध हो जायगी। देहातीकी स्त्रीको कुएँसे पानी भरना पडेगा,

चक्की पीसनी पड़ेगा, गौओं भैंसोंकी सानी आदिका प्रबन्ध करना पडेगा और इसी प्रकारके और भी अनेक कार्य करने पड़ेंगे । पर कोठीवाल महाशयकी स्त्री दिन भर मुलायम बिछौनो पर पडी पड़ी ' सरस्वती ' और ' स्त्रीदर्पण ' के पन्ने उलटेगी, जी घबराने पर हाथमे मौजा बुननेकी दो तीन सलाइयॉ और दो चार तोले ऊन ले लेगी और मिसरानी तथा मजदूरनी पर हुकुम चलावेगी । दस बरस बाद जब कभी किसी अवसर पर दोनों बहनोंकी भेंट होगी तब दोनोंका अन्तर आप ही प्रकट हो जायगा । देहातवाली स्त्री स्वयं हृष्ट पुष्ट होनेके अतिरिक्त दो चार मोटे ताजे बालकोंकी मॉ होगी और कोठीवालकी स्त्री दुबली, पतली और प्रदर रोगसे पीडित । यह एक अनुभवसिद्ध बात है कि पानी भरने और चक्की पीसनेवाली स्त्रियोंको प्रदर या उसी प्रकारका और कोई रोग बहुत ही कम और कदाचित् ही होता है, पर युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें जो स्त्रियॉ खूब पढ लिख कर डाक्टरी, बैरिस्टरी या क्लर्की करने लगती हैं उन्हें तरह तरहके सैकड़ों रोग आकर घेर लेते है । अत ऑखे बन्द करके किसी देशकी प्रथाका अनुकरण करनेसे पहले उस प्रथाके गुण-दोष आदिकी भी भली भॉति मीमासा कर लेनी चाहिए ऐसा न हो कि केवल तडक-भडकके भुलावेमें ही पड़कर हम अपने यहॉके उत्तम गुणोंको छोड बैठें और पीछे हाथ मलनेकी बारी आवे।

आजकलकी सभ्यता शरीरसे काम लेनेको पापसा समझती है, उसे सब कामोंके लिए कलें चाहिए । तो भी अधिकाश नगरनिवासियोको अपने पैरोसे तो बहुत कुछ काम लेना पड़ता है, पर हाथोसे काम लेनेकी उन्हें बहुत ही थोड़ी आवश्यकता पडती है । पर उचित और आवश्यक यह है कि जिस अंगसे हमारे व्यापारमें कम काम लिया जाता हो उस अगसे काम लेनेके लिए हम या तो व्यायाम करें और या अपने लिए कोई नया व्यापार निकालें । केवल मनोविनोद और स्वास्थ्यके लिए यदि हम बढई या लोहारका काम सीखे और फुरसतके समय घर पर ही दो चार पीढे-पटरियॉ बना सके तो इसमे लज्जा या सकोचकी कोई बात नहीं है । जगलमें जाकर लकडियॉ काटनेमे कोई शरम नही है, यदि शरम हो भी तो वह अधिकसे अधिक उन्हें अपने सिर पर लाद कर अपने घर तक लानेमे ही हो सकती है । गोलियॉ निगलने और शीशियॉ पीनेकी अपेक्षा

डड पेलना, बैठकें करना और मुगदल फेरना कहीं श्रेयस्कर है। अस्पताल बनवानेमें बहुतसे रुपये लगानेकी अपेक्षा अखाडे और व्यायामशालायें बनानेमें थोडे रुपये लगाना कहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न करके उन्हें चगा करनेका प्रयत्न व्यर्थ है, प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिसमें रोगका मूल ही नष्ट हो जाय, उसे उत्पन्न होने, बढ़ने और फैलनेका अवसर ही न मिले। जड छोड कर पेड़ काटना कभी लाभदायक नहीं हो सकता, क्योंकि जड फिर पनपेगी, पेड़ फिर उगेगा। यही नहीं बल्कि उसके बीज चारो ओर गिरकर और भी नये पेड उत्पन्न करेंगे। अपने शरीररूपी भूमिको रोगरूपी वृक्षके जमने योग्य ही न होने दो, और पहलेसे जो रोग उत्पन्न हो उनका समूल नाश करो, इसीमें तुम्हारा, तुम्हारी जातिका, तुम्हारे देशका और समस्त ससार तथा मानव-जातिका कल्याण है। एवमस्तु।